नई दिल्ली
रविवार, 21 जून, 2026, मूल्य-15.00
राष्ट्रीय
वर्ष-8 अंक-35 पृष्ठ- 8
RNI: DELHIN / 2018 / 76679
Postal Reg. No. DL(C)-05/1425/2025-27
License To Post Without Pre Payment No. U(C)-164/2025-27
Magazine Post Reg. No. DL(DS)-31/MP/25-26-27

संडे नवजीवन

Freedom is in Peril, Defend it with all your might Jawaharlal Nehru

भारत के ग्रामीण इलाके और कृषि क्षेत्र पानी की कमी से बेहाल हैं लेकिन सरकार इस भावी प्रलय से अछूती 4

बांग्लादेशियों की 'पुश बैक' नीति के कारण राजनयिक तनाव 3

यह जंगल किसने छीना 8

www.navjivanindia.com | @navjivanindia | www.nationalheraldindia.com | www.qaumiawaz.com

कानून से ऊपर तो नहीं है आरएसएस

संघ प्रमुख मोहन भागवत को लिखा गया प्रियांक खड़गे का पत्र अत्यंत मौलिक और जरूरी सवाल उठाता है

शम्सुल इस्लाम

लगता है कर्नाटक के गृह मंत्री प्रियांक खड़गे ने आरएसएस से सीधे दो-दो हाथ करने की ठान ली है। 13 जून 2026 को संघ प्रमुख मोहन भागवत को लिखे एक पत्र में वह कहते हैं: "जो संगठन रोज-रोज राष्ट्रवाद, अनुशासन और कर्तव्य की बात करता है, उसे पारदर्शिता, नियमों के पालन और भारत के संविधान के प्रति सम्मान के जरिये इन मूल्यों का प्रदर्शन भी करना चाहिए।"

आरएसएस आम भारतीयों से नियमों का पालन करने के लिए नहीं कह सकता, जबकि वह खुद उन नियमों को नहीं मानता। अगर कार्यकर्ताओं, छोटे संगठनों, धार्मिक संस्थाओं, एनजीओ, ट्रस्ट, कंपनियों और नागरिकों से रजिस्ट्रेशन कराने, जानकारी देने, ऑडिट का सामना करने और टैक्स भरने की उम्मीद की जाती है, तो आरएसएस को भी देश के नियम-कानूनों का पालन करके एक मिसाल कायम करनी चाहिए।" संघ को संविधान से बाहर मिली शक्तियों पर सवाल उठाना बहुत बड़ा कदम है। इसके तहत यह मांग की जा रही है कि संघ अपनी कानूनी स्थिति और फंड के स्रोतों का स्वयं खुलासा करे, और सबसे अहम बात वह सवाल कि उसे देश के कानूनों से छूट क्यों मिलनी चाहिए, इसका जवाब दे।

आरएसएस आधिकारिक तौर पर दावा करता है कि भारत और विदेश में उसकी 60,000 से ज्यादा शाखाएं और करोड़ों कार्यकर्ता हैं। खड़गे लिखते हैं: "इसी व्यापकता, प्रभाव और पहुंच की वजह से आरएसएस को पारदर्शिता, जवाबदेही और संवैधानिक नियमों के पालन के सर्वोच्च मानकों पर खरा उतरना चाहिए।"

केरला में संघ शताब्दी समारोह के एक कार्यक्रम में भागवत ने इस पत्र को "राजनीतिक हथकंडा" बताकर खारिज कर दिया। उन्होंने कहा कि उन्हें "जवाब देने की जरूरत नहीं है" और यह भी कि "हिन्दू धर्म रजिस्टर्ड नहीं है", या कि कई अन्य संस्थाएं भी बिना औपचारिक रजिस्ट्रेशन के काम करती हैं ऐसी ही कई और गोलमोल बातें। आरएसएस यह भी दावा करता है कि वह 'लोगों का एक समूह' है, जो किसी कानून के तहत सोसाइटी, ट्रस्ट, एनजीओ, कंपनी या राजनीतिक दल के तौर पर रजिस्टर्ड नहीं है।

आरएसएस स्वयं को एक स्वैच्छिक 'सांस्कृतिक संगठन' बताने का दिखावा करता रहा है। इसके अंग्रेजी मुखपत्र 'ऑर्गनाइजर' (6 फरवरी 2000) के एक संपादकीय के अनुसार: 'आरएसएस कोई राजनीतिक दल नहीं है। ...यह न तो चुनावों में हिस्सा लेता है और न ही इसके पदाधिकारी किसी राजनीतिक दल के पदाधिकारी बन सकते हैं। ...यह एक सामाजिक-सांस्कृतिक संगठन है जो सभी राष्ट्रीय गतिविधियों को प्रेरित करने की कोशिश करता है।'

*

आरएसएस खुद को एक सांस्कृतिक संगठन बताता है, लेकिन अपने स्थापना दिवस पर हथियारों की पूजा करता है! अनेक सिरों वाले इस एनजीओ की तमाम शाखाएं और सहयोगी संगठन हैं। संघ साहित्य के बड़े प्रकाशक 'रुचि प्रकाशन' द्वारा 1997 में प्रकाशित किताब 'परम वैभव के पथ पर' (लेखकः सदानंद डी. सप्रे) में आरएसएस द्वारा अलग-अलग कामों के लिए बनाए गए 40 से ज्यादा सहयोगी और सहायक संगठनों की जानकारी दी गई है (पूरी सूची हमारी वेबसाइट पर देखें)।

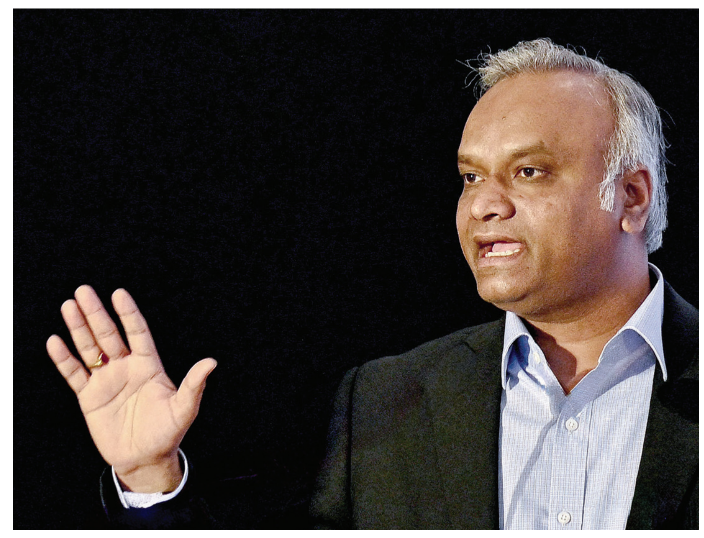

फोटोः गेटी इमेजेज

संघ प्रमुख मोहन भागवत (बाएं) ने कर्नाटक के गृह मंत्री प्रियांक खड़गे के उस पत्र का जवाब देने से इनकार कर दिया है, जिसमें वित्तीय जानकारी मांगी गई है

इनमें भाजपा के साथ-साथ एबीवीपी (अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद), हिन्दू जागरण मंच, विश्व हिन्दू परिषद, स्वदेशी जागरण मंच और संस्कार भारती भी प्रमुखता से शामिल हैं। यह भी याद रखना जरूरी है कि भारत के मौजूदा प्रधानमंत्री और लगभग सभी केन्द्रीय मंत्री, भाजपा के मुख्यमंत्री और राज्यपाल सार्वजनिक रूप से खुद को आरएसएस का सदस्य बताते हैं। इसके 'सांस्कृतिक संगठन' होने के दावे की बस यहीं इतिश्री हो जाती है।

आरएसएस कैसे काम करता है, यह समझने की चाहत रखने वालों के लिए सप्रे की किताब कई नई बातें सामने लाती है और उनके लिए इसे पढ़ना जरूरी है। इसके कई सहयोगी और सहायक संगठन, उनकी गतिविधियों को लेकर भ्रम फैलाने की एक चालाक रणनीति का हिस्सा हैं। यह संगठन आरएसएस को आड़ भी देते हैं और जरूरत पड़ने पर अलग होने का मौका भी। उदाहरण के लिए, 1990 के दशक के अंत में ईसाइयों पर हमले के लिए उसने 'हिन्दू जागरण मंच' का इस्तेमाल किया, और जब जनभावना खिलाफ हो गई, तो आरएसएस ने उससे किसी भी तरह का संबंध होने से इनकार कर दिया। जब कभी विहिप, बजरंग दल या विद्यार्थी परिषद की आपराधिक गतिविधियां सामने आती हैं, आरएसएस बड़ी आसानी से किनाराकशी करते हुए उन्हें स्वतंत्र संगठन बता देता है।

> नागपुर के ललन सिंह न्यायपालिका के दरवाजे खटखटा रहे हैं कि आखिर किन भारतीय नियमों के तहत आरएसएस प्रमुख को जेड प्लस सुरक्षा और इसके मुख्यालय को सीआईएसएफ का सुरक्षा कवच हासिल है, जिस पर टैक्स देने वाले आम भारतीयों के करोड़ों रुपये खर्च होते हैं?

*

सप्रे लिखते हैं कि 'हिन्दू जागरण अभियान' के लिए हिन्दू जागरण मंच 17 राज्यों में अलग-अलग नामों से सक्रिय हैं, जैसे दिल्ली में 'हिन्दू मंच', तमिलनाडु में 'हिन्दू मुन्नानी', महाराष्ट्र में 'हिन्दू एकजुट' वगैरह। वह लिखते हैं कि ये मंच हैं, न कि कोई एसोसिएशन या संगठन, इसलिए इनमें सदस्यता, रजिस्ट्रेशन या पदाधिकारियों के चुनाव की कोई जरूरत नहीं होती। ('परम वैभव के पथ पर', पेज 64)

यह बिल्कुल स्पष्ट है कि माफिया-स्टाइल वाला यह ढांचा कानूनी या प्रशासनिक जांच से बचने के लिए बनाया गया है। इन फ्रंट संगठनों के जरिये काम करने से आरएसएस को वह सुरक्षा मिल जाती है जिसकी उसे जरूरत होती है, ताकि हालात बिगड़ने या कभी-कभी कोई अप्रिय नतीजा सामने आ जाने पर वह खुद को उससे अलग रख सके।

बंटवारे के ठीक बाद दिल्ली के एक मामले को लेकर सप्रे लिखते हैं: 'स्वयंसेवकों ने दिल्ली मुस्लिम लीग का भरोसा जीतने और उनकी साजिशों का पता लगाने के लिए मुसलमानों का रूप धर लिया।' (वहीं, पृ. 86)

आजादी के समय मुसलमानों का रूप धरने वाले ये स्वयंसेवक क्या कर रहे थे, यह डॉ. राजेंद्र प्रसाद ने साफ किया था, जो बाद में भारतीय गणराज्य के प्रथम राष्ट्रपति बने। भारत के पहले गृह मंत्री सरदार वल्लभभाई पटेल को 14 मार्च 1948 को लिखे एक पत्र में प्रसाद ने लिखा: 'मुझे बताया गया है कि आरएसएस के लोगों की योजना गड़बड़ी फैलाने की है। उन्होंने कई लोगों को मुसलमानों के कपड़े पहनाकर और मुसलमानों जैसा रूप देकर तैयार किया है, जो हिन्दुओं पर हमला करके और उन्हें उकसाकर गड़बड़ी फैलाएंगे। इसी तरह, उनमें कुछ हिन्दू भी होंगे जो मुसलमानों पर हमला करेंगे और उन्हें उकसाएंगे। हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच इस तरह की गड़बड़ी का नतीजा एक बड़ी आग (दंगे) भड़कने जैसा होगा।' (राजेंद्र प्रसाद का 14 मार्च 1948 का सरदार पटेल को पत्र, जिसका जिक्र नीरज सिंह (संपादक) की किताब 'नेहरू-पटेलः एग्रीमेंट विदिन डिफरेंस- सेलेक्ट डॉक्यूमेंट्स एंड कॉरेस्पोंडेंस 1933-1950', एनबीटी, दिल्ली, पृ. 43 में है)

*

मोहन भागवत कहते हैं कि आरएसएस सरकारी फंड नहीं लेता है। यह सरासर झूठ है: उन्हें न सिर्फ भारत सरकार से, बल्कि वर्ल्ड बैंक जैसी अंतरराष्ट्रीय एजेंसियों से भी पैसे मिलते हैं। पिछले महीने (21-25 मई 2026), अखिल भारतीय वनवासी कल्याण आश्रम ने दिल्ली में एक बड़ा राष्ट्रीय कार्यक्रम आयोजित किया, जिसकी मेजबानी आरएसएस और भाजपा सरकार ने की थी। (24 मई 2026 के 'द टेलीग्राफ' की रिपोर्ट)

'इंडियन एक्सप्रेस' (18 मई 2026) की एक खोजी रिपोर्ट के अनुसार, एनएसडीएफ (नेशनल स्पोर्ट्स डेवलपमेंट फंड, जो बेहतरीन एथलीटों के लिए 'टारगेट ओलंपिक पोडियम स्कीम' जैसे जाने-माने स्पोर्ट्स मिशन को फंड देता है) से करोड़ों रुपये वरिष्ठ नौकरशाहों की सुविधाओं और राजस्थान तथा छत्तीसगढ़ में आरएसएस से जुड़ी दो संस्थाओं के लिए निकाले गए।

ऐसे अनेक मामले सामने ही नहीं आ पाते क्योंकि आरएसएस रजिस्टर्ड नहीं है और उसके लेन-देन की कोई जांच-पड़ताल नहीं होती। भारत और विदेशों से सैकड़ों करोड़ रुपये इकट्ठा करने और अपनी खुली और गुप्त गतिविधियों के लिए लाखों कर्मचारियों को काम पर रखने के बावजूद, आरएसएस का कोई बैंक खाता नहीं है।

नागपुर के दिहाड़ी मजदूर और एक सच्चे भारतीय देशभक्त ललन सिंह एक सीधा-सादा सा जवाब पाने के लिए न्यायपालिका के दरवाजा खटखटा रहे हैं कि आखिर किन भारतीय नियमों के तहत आरएसएस प्रमुख को जेड प्लस वीवीआईपी सुरक्षा और आरएसएस मुख्यालय को सीआईएसएफ का सुरक्षा कवच हासिल है, जिस पर टैक्स देने वाले आम भारतीयों के करोड़ों रुपये खर्च होते हैं? और यह सब एक ऐसे संगठन के लिए हो रहा है, जो रजिस्टर्ड भी नहीं है। ■

शम्सुल इस्लाम लेखक, शिक्षाविद और एक्टिविस्ट हैं

जब युद्ध भारतीय गांव तक पहुंचा

इस युद्ध ने भारत की ग्रामीण अर्थव्यवस्था की कमजोरी को उजागर कर दिया है, जिससे किसान, व्यापारी, निर्यातक और ट्रांसपोर्टर सभी प्रभावित हुए हैं... महाराष्ट्र के एक गांव से रिपोर्ट

प्याज किसान मुश्किल दौर से गुजर रहे हैं। उन्हें फसल लागत से भी कम दाम पर प्याज बेचने के लिए मजबूर होना पड़ रहा है

जयदीप हार्दीकर

एक दुपहरिया मेरी मुलाकात महाराष्ट्र के धाराशिव जिले के सूखा प्रभावित कस्बे 'भूम' में एक ऐसे किसान से हुई जो अपनी मोटरसाइकिल पर डीजल भरे दो केन बांधकर पेट्रोल पंप से बाहर निकल रहा था।

वाकवाड़ गांव के तुकाराम मसाल के पास दो ट्रैक्टर हैं। बुवाई के दौरान, वह इन्हें पड़ोसी किसानों को किराये पर देकर अपनी छोटी-सी जमीन और डेयरी व्यवसाय से होने वाली कम आय की भरपाई करते हैं। लेकिन इस साल, डीजल पाना अपने आप में एक काम बन गया। उन्होंने कहा, 'आपको ढूंढते रहना पड़ता है। पंप थोड़ा डीजल देते हैं। आप किसी एक जगह पर निर्भर नहीं रह सकते।'

खरीफ बुवाई का मौसम नजदीक है। महाराष्ट्र के कुछ हिस्सों में मानसून आ चुका है। फिर भी बातचीत का विषय बारिश और फसल ही नहीं। डीजल, उर्वरक, माल ढुलाई शुल्क, शिपिंग मार्ग और निर्यात बाजार चर्चा के विषय बन गए हैं। कारण हजारों किलोमीटर दूर! पश्चिम एशिया के युद्ध ने ग्रामीण इलाकों की कमजोरियों को सामने ला दिया। भारत की प्याज राजधानी कहे जाने वाले नासिक जिले में, इस संकट ने खास रूप अख्तियार कर लिया है।

तीन दशकों में, नासिक की प्याज अर्थव्यवस्था घरेलू और अंतरराष्ट्रीय बाजारों के विस्तार के साथ बढ़ी। प्याज के उत्पादन, भंडारण और आवाजाही के इर्द-गिर्द पूरी स्थानीय अर्थव्यवस्थाएं विकसित हुईं। नासिक में 22 एपीएमसी हैं, जो करोड़ों का कारोबार करती हैं। किसानों ने भंडारण संरचनाओं, सिंचाई और मशीनीकरण, ट्रैक्टरों, वाहनों, बेहतर घरों, बेहतर शिक्षा में निवेश किया। किसान से व्यापारी बने लोगों ने खाड़ी, बांग्लादेश, श्रीलंका और अन्य स्थानों तक फैला नेटवर्क विकसित किया। युवा किसान-व्यापारी तुषार दावंगे, जो अंगूर भी उगाते हैं, ने बताया कि वह अपने विशाल घर और समृद्धि के लिए प्याज के कर्जदार हैं। लेकिन इस साल उस समृद्धि की बुनियाद हिल गई है।

फरवरी और मार्च में हुई बेमौसम बारिश ने फसलों को नुकसान पहुंचाया। गर्मियों की प्याज, जो नासिक की सबसे महत्वपूर्ण व्यावसायिक फसल है, उसे रखा नहीं जा सका। जो किसान आम तौर पर महीनों तक प्याज का भंडारण करते और उन्हें किश्तों में बेचते थे, वे इस डर से उपज को बाजार ले जाने के लिए मजबूर हुए कि वह सड़ जाएगी। ऐसा नहीं है कि प्याज ने पहले उतार-चढ़ाव नहीं देखे हैं, लेकिन इस बार की संकटपूर्ण बिक्री बार-बार के नीतिगत बदलावों और वैश्विक अस्थिरता से प्रभावित थी।

> सांगवी के ट्रक मालिकों के लिए यह युद्ध कोई भू-राजनीतिक घटना नहीं है। इसे डीजल के बिलों, बीमा प्रीमियम, डिलीवरी शेड्यूल और परिचालन लागत में मापा जाता है और स्वाभाविक ही युद्ध उन पर चौतरफा शिकंजा कस रहा है

कलवन तहसील के ओटुर गांव में दस एकड़ में खेती करने वाले 41 वर्षीय भगवान मोरे को मई के अंत में अपनी फसल 11 रुपये प्रति किलो बेचनी पड़ी, जो लागत से कम से कम 10 रुपये कम थी। पांच एकड़ के किसान 29 वर्षीय समाधान ताकते ने 25 रुपये के सामान्य भाव की बजाय 11.50 रुपये में 30 क्विंटल प्याज बेची। नासिक के वणी मार्केट यार्ड में उन्होंने थके-निराश स्वर में मुझसे कहा कि यह एक बहुत बड़ा नुकसान है।

कुछ किसानों को मार्च-अप्रैल में अपनी उपज 1 रुपये प्रति किलो जितनी कम कीमत पर भी बेचनी पड़ी। श्रीलंका, बांग्लादेश और यूरोपीय बाजारों ने पहले ही हमारी प्याज का आयात बंद कर दिया, कोई नया बाजार मिला नहीं और खाड़ी के मौजूदा बाजार युद्ध के कारण आपूर्ति व्यवधानों की वजह से अपनी प्रतिबद्धताओं से पीछे हट रहे हैं।

उत्तरी महाराष्ट्र के कई हिस्सों में प्रदर्शन शुरू हो गए। किसानों ने सरकारी एजेंसियों के हस्तक्षेप की मांग की और उसके बाद केंद्रीय खरीद संस्था नेफेड ने घोषणा की कि वह किसानों से प्याज खरीदेगी। यह काम नहीं आया। केवल मौसम ही इस संकट की भयावहता को बयां नहीं करता। नासिक की सबसे अच्छी प्याज पारंपरिक रूप से विदेशों, खास तौर पर खाड़ी, में खरीदे जाते हैं। ज्यादा उपज का निर्यात करके किसानों को बेहतर कीमत मिल जाती थी। लेकिन इस साल व्यापारियों और निर्यातकों को बाधित बाजारों, बढ़ती माल ढुलाई दरों, शिपिंग शेड्यूल में अनिश्चितता और सिकुड़ते मुनाफे का सामना करना पड़ रहा है।

व्यापारियों को माल ढुलाई दरों और शिपिंग में देरी पर चर्चा करते सुनकर कोई भी हैरान हो सकता है कि क्या यह एक कृषि क्षेत्र है? एशिया के सबसे बड़े प्याज बाजारों में से एक, लासलगांव में किसान और व्यापारी कंटेनर की बढ़ती लागत और निर्यात ऑर्डरों में मंदी का विलाप कर रहे हैं।

तमाम किसानों, व्यापारियों और निर्यातकों समेत दावंगे ने कहा कि वे इस साल कोई जोखिम नहीं ले रहे हैं, जिसका मतलब है कि आने वाले महीनों में कीमतें नहीं सुधरेंगी। जिन किसानों ने अपनी सबसे अच्छी प्याज को साइलो में रखा हुआ है, वे शायद लागत भी वसूल न कर पाएं।

बदलाव की कहानी

दशकों तक, ग्रामीण भारत की कल्पना ऐसी दुनिया के रूप में की जाती थी जो मानसून, स्थानीय बाजारों और सरकारी नीति से आकार लेती थी। आज, एक छोटे से गांव के खेत में उगाई जाने वाली फसल अंतरराष्ट्रीय आपूर्ति श्रृंखलाओं, शिपिंग नेटवर्क और भू-राजनीतिक घटनाक्रमों से जुड़ी हुई है। प्याज किसान भले ही कभी खाड़ी देश न देखे, लेकिन उसकी आजीविका तेजी से उसी पर निर्भर होती जा रही है।

लासलगांव एपीएमसी के निदेशकों में से एक और जाने-माने प्याज विशेषज्ञ जयदत्त होलकर ने नासिक में मुझसे कहा, 'एक निश्चित आयात-निर्यात नीति जरूरी है और हमें फौरन नए विदेशी बाजार खोजने चाहिए क्योंकि हमारे भरोसेमंद बाजार संतृप्त हो चुके हैं और बांग्लादेश जैसे देश खुद प्याज उपजा रहे हैं।' यहां से कई सौ किलोमीटर दूर, बीड जिले के सारनी सांगवी गांव में एक और अर्थव्यवस्था इसी सच्चाई को उजागर करती है।

सांगवी सूखा प्रवण मराठवाड़ा क्षेत्र में है, जहां खेती अनिश्चित रही है और इली कारण पलायन होता रहा। पीढ़ियों से कई परिवार गन्ना काटने वाले या मौसमी मजदूरों के रूप में काम करते थे। फिर परिवहन ने सब बदल दिया। परिवहन कंपनियों के साथ ट्रक ड्राइवरों के रूप में काम करने वाले युवाओं ने उद्यमिता की ओर बड़ी छलांग लगाई। एक ट्रक से तीन हुए और फिर तीन से दस। आज, दर्जनों परिवारों के पास परिवहन व्यवसाय हैं और इस अप्रत्याशित लॉजिस्टिक्स हब से सैकड़ों ट्रक संचालित होते हैं।

सुभाष बिक्कड़ इसके अग्रदूतों में थे। सालों ट्रक चलाने के बाद, उन्होंने खुद का बेड़ा तैयार किया और तमाम लोगों को प्रेरित किया।

शेष पेज 2 पर ▸

मणिपुर में, 'सत्ता-साझेदारी न होना मुख्य वजह है'

तंगखुल नगा समुदाय के **रामनगैनिंग उर्फ राम मुइवा** 35 सालों तक आईएएस अधिकारी रहे और 2019 में पूर्वोत्तर परिषद के सचिव पद से रिटायर हुए। वर्ष 2022 में वह नगा पीपुल्स फ्रंट के टिकट पर विधायक चुने गए। वर्ष 2023 में जब मैतेई और कुकी-जो समुदायों के बीच झड़पें हुईं, तब उखरुल जिले में नगा तटस्थ रहे थे। आज, उखरुल और कामजोंग जिले मणिपुर में हो रही हिंसा के केन्द्र में हैं। मानवाधिकार वकील, लेखिका और ऐक्टिविस्ट **नंदिता हक्सर** से बात करते हुए मुइवा ने इन जटिलताओं को स्पष्ट किया। बातचीत के मुख्य अंश:

नगा और कुकी-जो दोनों का कहना है कि मणिपुर और केन्द्र की एक के बाद एक सरकारों ने पहाड़ी जिलों के साथ भेदभाव किया। क्या आप सहमत हैं?

इस मुद्दे को सही परिप्रेक्ष्य में समझने के लिए इस बात पर गौर करें कि उत्तर पूर्व भारत की सभी पहाड़ी जनजातियों को राज्य का दर्जा मिला है, जिसकी शुरुआत 1963 में नगालैंड, 1972 में मेघालय, 1975 में सिक्किम, और 1987 में अरुणाचल प्रदेश और मिजोरम से हुई। अन्य आदिवासियो- जिनमें असम के मैदानी इलाकों के बोडो, कार्बी और डिमासा तथा त्रिपुरा की पहाड़ी जनजातियां शामिल हैं- को संविधान की छठी अनुसूची के तहत क्षेत्रीय परिषदों का लाभ मिला। अफसोस की बात यह है कि मणिपुर की पहाड़ी जनजातियों को स्थानीय स्वायत्तता तक से वंचित रखा गया है। मणिपुर में कथित स्वायत्त जिला परिषद (एडीसी) पूरी तरह दंतविहीन है।

हाल ही में, आयकर के एक सेवानिवृत्त मुख्य आयुक्त ने घाटी और पहाड़ी जिलों के बीच बजटीय आवंटन और निवेश में भारी असमानता के बारे में मुख्यमंत्री को अपने निष्कर्ष सौंपे। 2024-25 में, घाटी में पूंजीगत व्यय 5,215 करोड़ रुपये (93 फीसद) था, जबकि पहाड़ियों में यह सिर्फ 378 करोड़ (7 फीसद) था। इस दौरान राजस्व व्यय घाटी में 22,632 करोड़ रुपये (85 फीसद) और पहाड़ियों में महज 4,041 करोड़ रुपये (15 फीसद) था।

इस आरोप में कितनी सच्चाई है कि सुरक्षा बल, विशेष रूप से असम राइफल्स, तंगखुल नगा लोगों को कुकी उग्रवादियों के हमलों से बचाने में विफल रहे हैं?

मुझे ऐसी शिकायतें मिली हैं कि असम राइफल्स और भारतीय सेना ने म्यांमार से कुकी उग्रवादियों को उखरुल जिले में पहुंचाया। 7 मई को, जब म्यांमार के केएनए-बी (कुकी नेशनल आर्मी-बर्मा) उग्रवादियों ने सीमावर्ती गांवों चोरो, वांगली और नामली पर हमला किया, तो सुबह 4 बजे से 7 बजे तक घर जलते रहे, लेकिन अलोयो स्थित असम राइफल्स की चौकी-जो चोरो से महज कुछ सौ मीटर की दूरी पर है-ने हस्तक्षेप करने की जहमत नहीं उठाई।

मैं 9 मई को मणिपुर के गृह मंत्री के साथ इस सीमावर्ती क्षेत्र के दौरे पर गया था। हम जहां भी गए, महिलाओं ने आंसुओं और गुस्से के साथ मांग की कि सीमावर्ती क्षेत्रों में असम राइफल्स की जगह राज्य के बलों को तैनात किया जाए। मौके से बरामद कुकी उग्रवादियों द्वारा इस्तेमाल की गई गोलियां भारतीय आयुध कारखानों से आई थीं; वे सभी सैन्य ग्रेड की थीं और खुले बाजार में उपलब्ध नहीं हैं। वे जिन हथियारों का इस्तेमाल करते हैं, वे ज्यादातर लाइट मशीन गन (एलएमजी), एसएलआर और दूरबीन से लैस हैं, जैसा कि भारतीय सैनिक इस्तेमाल करते हैं। इन्हें ये मिलते कहां से हैं?

उखरुल की एसपी की गाड़ी को मोंगकोट चेपु के कुकियों द्वारा राष्ट्रीय राजमार्ग-202 पर भारतीय सेना की नाक के नीचे बुरी तरह क्षतिग्रस्त कर दिया गया। उन्होंने हस्तक्षेप करने और एसपी, जो कि एक महिला हैं, को बचाने की जहमत नहीं उठाई। जिला प्रशासन के प्रमुख उपायुक्त को वापस इंफाल भेज दिया गया, जहां से उन्हें उखरुल जिला मुख्यालय पहुंचने के लिए हेलिकॉप्टर का सहारा लेना पड़ा।

सोशल मीडिया पर, मैंने सेना के जवानों के वीडियो देखे जो (फरवरी में) लितन में नगाओं के घरों को जलाने में कुकी उग्रवादियों का साथ दे रहे थे। मैंने इन आरोपों को मणिपुर में भारतीय सेना के अधिकारियों के संज्ञान में लाया है।

मैतेई-कुकी हिंसा के दौरान नगा तटस्थ थे। अब उन्हें हिंसा के इस दौर में क्यों घसीटा गया है?

कुकी प्रमुखों और पादरियों ने मुझे बताया कि उखरुल में अल्पसंख्यक होने के नाते, जहां कुकियों की आबादी 1 फीसद से भी कम है, वे तंगखुल नगाओं से लड़ना नहीं चाहते। उन्होंने बताया कि घरों को जलाने और निर्दोषों की हत्या का यह पूरा काम विस्थापितों, जिनमें से कई म्यांमार से हैं, और माउंट सिनाई में घोषित एसओओ (सस्पेंशन ऑफ ऑपरेशन) कैंप में शरण लेने वाले कुकी उग्रवादियों द्वारा किया गया था।

> म्यांमार और भारत में रहने वाले नगा एक साथ रहना चाहते हैं। आदर्श रूप से, हमें दीवारें उसी तरह गिरा देनी चाहिए, जैसे पूर्वी और पश्चिमी जर्मनी के बीच बर्लिन की दीवार गिराई गई थी

नगा-बहुल क्षेत्रों में कुकी बस्तियां क्यों बढ़ रही हैं? वे म्यांमार से हैं या भारत से?

बिल्कुल संभव है कि कुछ कुकी-भाषी लोग म्यांमार से पलायन कर आए हों। मुझे एक रिपोर्ट मिली है कि म्यांमार के कुकी उखरुल और कामजोंग जिलों में अफीम उपजा रहे हैं; वे कुकी गांव के मुखिया को 'कर' के रूप में सालाना 1 किलोग्राम अफीम और 'कुकी वॉर चेस्ट' (युद्ध कोष) को 1 किलोग्राम अफीम का भुगतान करते हैं।

क्या सैन्य शासन और उत्पीड़न से बचकर आने वाले म्यांमार के शरणार्थियों और भारत में बसने के स्पष्ट उद्देश्य से आने वाले अवैध प्रवासियों में अंतर होना चाहिए?

मणिपुर सरकार ने म्यांमार के वास्तविक शरणार्थियों को जरूरी मदद दी है। गृह मंत्री के साथ सीमावर्ती क्षेत्र के मेरे हालिया दौरे पर, हमने उन शरणार्थियों से मुलाकात की, जिनमें से लगभग 300 राज्य सरकार की जानकारी में नामली तंगखुल गांव में शरण लिए हुए हैं।

मुझे लगता है कि आपने कामजोंग जिले में भारत-म्यांमार सीमा पर स्थित तीन नगा गांवों का दौरा किया, जिन पर म्यांमार के कुकी उग्रवादियों और कथित तौर पर बर्मी पीपुल्स डिफेंस फोर्स ने हमला किया था?

सीमावर्ती गांवों पर वास्तव में म्यांमार के कुकी उग्रवादियों ने हमला किया था। हालांकि, इसके मकसद का अंदाजा लगाना मुश्किल है। कामजोंग मणिपुर के लिए सबसे अधिक राजस्व उत्पन्न करने वाला क्षेत्र बन गया था, मुख्य रूप से सुपारी, लकड़ी, पशुधन जैसी वस्तुओं के फलते-फूलते सीमा व्यापार से। हमें संदेह है कि उग्रवादी उस व्यापार को कुकी-जो बहुल जिले चूराचांदपुर की ओर मोड़ना चाहते थे।

पत्रकारों और शिक्षाविदों के जमीनी अध्ययन पुष्टि करते हैं कि सीमावर्ती गांवों में नशीली दवाओं की तस्करी बढ़ी है और इसमें सभी समुदाय शामिल हैं। कुकियों को नार्को-आतंकवादी कहना कितना उचित है?

यह सच है कि समाचार पत्र अक्सर मणिपुर, असम, मिजोरम और नगालैंड में कुकी द्वारा नशीली दवाओं की तस्करी की रिपोर्ट करते हैं। उखरुल और कामजोंग में अफीम की खेती ने पर्यावरण को तबाह कर दिया है। वे सभी अनछुए जंगल,जिन्हें मैं देखते हुए बड़ा हुआ हूं, अब अवैध अफीम की खेती के कारण उजाड़ हो चुके हैं। यह भी सच है कि अफीम की खेती सभी समुदाय कर रहे हैं। यहां तक कि भारतीय सेना और मणिपुर राज्य के बलों के नशीली दवाओं की तस्करी करते हुए रंगे हाथों पकड़े जाने के मामले भी सामने आए हैं, लेकिन मुझे अभी तक गिरफ्तार किए गए इन अधिकारियों को सजा मिलने का कोई मामला देखने को नहीं मिला है।

भारत-म्यांमार सीमा का निर्धारण अंग्रेजों द्वारा लोगों से राय-मशविरा किए बिना किया गया था। अब भारत सरकार वहां दीवार बनाना चाहती है।

अंग्रेजों द्वारा खींची गई कृत्रिम राजनीतिक सीमा नगा लोगों के लिए एक त्रासदी थी, और हम आज भी उसके नतीजे भुगत रहे हैं। म्यांमार और भारत के नगा एक ही प्रशासन के तहत एक साथ रहना चाहते हैं। आदर्श रूप से, हमें दीवारों को गिरा देना चाहिए, जैसे पूर्वी और पश्चिमी जर्मनी के बीच बर्लिन की दीवार को गिराया था।

हम किसी आदर्श दुनिया में नहीं रह रहे। शायद कुछ जिलों- चूराचांदपुर, चंदेल और तेंगनौपाल- में जहां अवैध प्रवासियों की भारी घुसपैठ है, वहां 'सुरक्षा बाड़' की जरूरत है। हालांकि, उखरुल में बाड़ लगाने की कोई जरूरत नहीं क्योंकि नगा सीमा के दोनों ओर रहते हैं और नगा संस्कृति में प्रवासन को अपमानजनक माना जाता है।

जब हम कुकी कहते हैं, तो इसमें कई समुदाय शामिल होते हैं। कृपया बताएं कि कौन से कुकी तंगखुलों पर हमले कर रहे हैं। यह और भी भ्रमित करने वाला है क्योंकि तंगखुल 2023 में कुकी-जो को आश्रय दे रहे थे, और अब भी ऐसा कर रहे हैं।

कुकी एक जेनेरिक अभिव्यक्ति है और थाडौ इसके तहत आने वाली प्रमुख जनजातियों में से एक हैं। हालांकि कुछ थाडौ बुद्धिजीवियों ने स्पष्ट किया है कि वे कुकी के रूप में नहीं पहचाना जाना चाहते हैं। मेरा मानना है कि तंगखुलों पर हालिया हमले थाडौ और कुकी दोनों जनजातियों द्वारा किए गए। जैसा कि मैंने पहले कहा, न तो आम कुकी और न ही तंगखुल की हिंसा में रुचि हैं। यह कुकी उग्रवादी और विस्थापित लोग हैं जो तबाही मचा रहे हैं।

क्या आपके पास मणिपुर में शांति का कोई रोड मैप है?

हमें केवल लक्षणों से निपटना बंद करना चाहिए। मणिपुर में हिंसा का मूल कारण, जनसांख्यिकीय असंतुलन और मादक पदार्थों की तस्करी के अलावा, सत्ता में हिस्सेदारी और एक-दूसरे को साथ लेकर चलने की भावना का अभाव है।

मिश्रित आबादी के एक साथ शांतिपूर्वक रहने और समृद्ध होने के तमाम उदाहरण हैं। मेघालय में आठ मुख्यमंत्री रहे हैं, चार गारो और चार खासी; उपमुख्यमंत्री एक छोटी जनजाति, जैंतिया से हैं। सिक्किम में, राज्यसभा सांसद हमेशा अल्पसंख्यक समुदाय, भूटिया या लेप्चा से होते हैं। सिंगापुर के राष्ट्रपति हमेशा अल्पसंख्यक समुदाय, मलय या तमिल मूल के होते हैं। हमें इन बेहतरीन प्रथाओं और सफलता की कहानियों को दोहराना चाहिए; मणिपुर के लिए आगे बढ़ने का यही रास्ता है। ■

जब युद्ध भारतीय गांव तक पहुंचा

▸▸ पेज एक का शेष

बिक्कड़ ने कहा, 'जब मैंने एक दशक से अधिक समय पहले व्यवसाय शुरू किया था, डीजल लगभग 50 रुपये लीटर था। आज, यह लगभग दोगुना है।' पिछले एक महीने में, जब से पांच राज्यों के चुनाव समाप्त हुए हैं, केंद्र ने पांच किश्तों में ईंधन की कीमतें बढ़ाई हैं।

सांगवी के ट्रक मालिकों के लिए, यह युद्ध कोई अमूर्त भू-राजनीतिक घटना नहीं है। इसे डीजल के बिलों, बीमा प्रीमियम, डिलीवरी शेड्यूल और परिचालन लागत में मापा जाता है। उनकी चिंताएं नासिक में सुनी गई चिंताओं से मेल खाती हैं। एक प्याज निर्यातक और एक ट्रक ऑपरेटर अलग-अलग दुनिया के दिख सकते हैं लेकिन दोनों एक ही बुनियादी ढांचे-सड़कों, बंदरगाहों, जहाजों, ईंधन और लॉजिस्टिक्स नेटवर्क-पर निर्भर हैं। जब उस प्रणाली में अस्थिरता आती है, तो दोनों इसके असर महसूस करते हैं।

उत्तर और मध्य महाराष्ट्र की मेरी यात्राओं के दौरान मुझे जो बात सबसे ज्यादा प्रभावित की, वह घबराहट नहीं बल्कि नाजुकता थी। हर जगह, लोग एक ही सवाल अलग-अलग तरह से पूछते मिले: अगर स्थिति और बिगड़ी तो क्या होगा? बुवाई से पहले किसान ईंधन और उर्वरक की आपूर्ति को लेकर चिंतित हैं। व्यापारी बाजारों से चिंतित हैं। ट्रांसपोर्टर बढ़ती लागत पर चिंतित हैं। कई लोग मौसम को लेकर चिंतित हैं। पिछले साल, बाढ़ के कारण मराठवाड़ा की खड़ी फसलें नष्ट हो गई थीं और घर तबाह हो गए थे। इस साल, अल नीनो की संभावना ने चिंता बढ़ा दी है।

ग्रामीण महाराष्ट्र का बड़ा हिस्सा पहले ही जलवायु परिवर्तन के नतीजों से जूझ रहा है। भारत के तमाम क्षेत्रों की यही कहानी है। इनपुट लागत लगातार बढ़ रही है और कृषि आय अस्थिर है। कृषि के बाहर ग्रामीण रोजगार के अवसर सीमित हैं। इस पृष्ठभूमि में, पश्चिम एशिया का संघर्ष किसानों की दुश्वारियों को बढ़ा देता है। यह मौजूदा नाजुकता को बढ़ाता है।

जब मैं भूम से निकल रहा था, तुकाराम मसाल अपनी मोटरसाइकिल के दोनों ओर डीजल के डिब्बों को संतुलित करते हुए घर की ओर चल दिए। उनके दो दोस्तों ने भी ऐसा ही किया। ■

विवाद जो चुनाव तक करेगा मान का पीछा

वीडियो से उपजा घटनाक्रम सत्तारूढ़ दल के भीतर काफी असहजता पैदा कर सकता है। अकाल तख्त के फैसले ने इसे और बढ़ा दिया है

हरजिंदर

एक वीडियो इस समय पंजाब की राजनीति में भारी उथल-पुथल मचा रहा है। इस वायरल फुटेज को किसी निजी कमरे में रिकॉर्ड किया गया बताया जा रहा है। इसमें भगवंत मान से मिलता-जुलता एक व्यक्ति शराब पीता हुआ और सिख गुरुओं के चित्रों पर शराब छिड़कता दिखाई देता है। हालांकि वीडियो की प्रामाणिकता को लेकर विवाद जारी है, लेकिन इसके राजनीतिक परिणाम सामने आने शुरू हो चुके हैं।

विवाद तब और गहरा गया जब सिखों की सर्वोच्च धार्मिक संस्था अकाल तख्त ने इसे लेकर मान को 'गुरु-दोषी' और 'खालसा पंथ विरोधी' घोषित कर दिया। अकाल तख्त ने मुख्यमंत्री मान पर न केवल सिख भावनाओं को ठेस पहुंचाने का आरोप लगाया, बल्कि यह भी कहा कि उन्होंने वीडियो को आर्टीफीश्यिल इंटेलीजेंस (एआई) से तैयार किया गया बताकर संस्था को गुमराह करने का प्रयास किया।

मान ने इन आरोपों को सिरे से खारिज किया है। आम आदमी पार्टी के नेता का कहना है कि वीडियो में दिखाई देने वाला व्यक्ति वह खुद नहीं हैं।

विवाद की शुरुआत इसी साल दर्ज कराई गई एक शिकायत से हुई थी। शिकायत में आरोप लगाया गया था कि मान ने 'गुरु की गोलक' को लेकर विवादास्पद टिप्पणियां की थीं और सोशल मीडिया पर प्रसारित एक वीडियो में सिख गुरुओं और मारे गए उग्रवादी नेता जरनैल सिंह भिंडरांवाले के चित्रों से आपत्तिजनक व्यवहार किया था।

अकाल तख्त के जत्थेदार ज्ञानी कुलदीप सिंह गरगज्ज के अनुसार, मान जनवरी में वहां पेश हुए थे और उन्होंने दावा किया था कि वीडियो फर्जी है। इसके बाद अकाल तख्त ने मुख्यमंत्री से उन फोरेंसिक प्रयोगशालाओं के नाम सुझाने को कहा था जो स्वतंत्र रूप से वीडियो की जांच कर सकें। गरगज्ज ने बताया कि इसका उन्हें कोई जवाब नहीं मिला। अकाल तख्त ने केन्द्र सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त दो फोरेंसिक प्रयोगशालाओं से वीडियो की जांच कराई। दोनों इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि वीडियो वास्तविक है।

निर्णय की घोषणा करते हुए गरगज्ज ने कहा, "मुख्यमंत्री का पद सम्मानजनक होता है। लेकिन मुख्यमंत्री भगवंत सिंह मान ने अकाल तख्त के समक्ष झूठ बोला।"

इस विवाद ने सत्तारूढ़ आम आदमी पार्टी को ऐसे समय में बेहद कठिन स्थिति में ला खड़ा किया है, जब पंजाब विधानसभा चुनावों में केवल कुछ ही महीने बचे हैं। हालांकि अकाल तख्त के पास किसी निर्वाचित मुख्यमंत्री को पद से हटाने का संवैधानिक अधिकार नहीं है, फिर भी सिखों के बीच उसका नैतिक और धार्मिक प्रभाव काफी व्यापक है।

मान को 'गुरु-विरोधी' करार देकर अकाल तख्त ने विपक्ष को एक बहुत बड़ा भावनात्मक राजनीतिक मुद्दा सौंप दिया है। भले ही कानूनी और चुनावी नियम राजनीतिक दलों को चुनाव प्रचार में सीधे तौर पर हुक्मनामे को हथियार बनाने से रोकते हों, लेकिन ऐसे आदेश का सामाजिक और मनोवैज्ञानिक प्रभाव नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। पंजाब का ग्रामीण सिख मतदाता धार्मिक संस्थाओं से गहराई से जुड़ा हुआ है, वह इस विवाद को सामान्य राजनीतिक घोटालों से बिल्कुल अलग नजरिये से देख सकता है। अकाल तख्त द्वारा सिख समुदाय से मान के साथ "रिश्ते खत्म करने" की अपील ने स्थिति को और जटिल बना दिया है। पंजाब की राजनीति के वरिष्ठ पर्यवेक्षक जसबीर सिंह पट्टी का मानना है कि इससे अभूतपूर्व प्रशासनिक और सामाजिक दुविधाएं पैदा होंगी। वह कहते हैं, "मान सरकार के अधीन काम करने वाले सिख नौकरशाहों और अधिकारियों के लिए यह बड़ी दुविधा होगी। वे अपने ही बॉस से संबंध कैसे तोड़ सकते हैं?"

सरकार की मुश्किलें उसी दिन (15 जून) अकाल तख्त द्वारा जारी की गई एक अन्य फटकार से और बढ़ गईं। तख्त ने पंजाब सरकार के 'जगत जोत श्री गुरु ग्रंथ साहिब सत्कार (संशोधन) अधिनियम, 2026' की आलोचना करते हुए आरोप लगाया कि इसे प्रमुख सिख संस्थाओं से पर्याप्त परामर्श किए बिना लागू किया गया। संस्था ने सरकार पर धार्मिक संगठनों द्वारा उठाई गई आपत्तियों की अनदेखी करने का आरोप लगाया। साथ ही मान को छोड़कर पंजाब मंत्रिमंडल के सभी सिख मंत्रियों तथा विभिन्न दलों के सिख विधायकों को 29 जून को अकाल तख्त के समक्ष पेश होने के लिए तलब किया गया है। गैर-सिख मंत्रियों और विधायकों से भी स्पष्टीकरण मांगा गया है।

स्वर्ण मंदिर परिसर में फैसला सुनाते अकाल तख्त साहिब के कार्यवाहक जत्थेदार ज्ञानी कुलदीप सिंह गरगज्ज और अन्य

> मान को 'गुरु-विरोधी' करार देकर अकाल तख्त ने विपक्ष को बड़ा मुद्दा सौंप दिया है। भले ही कानूनी और चुनावी नियम दलों को चुनाव प्रचार में सीधे तौर पर हुक्मनामे को हथियार बनाने से रोकते हों, लेकिन ऐसे आदेश के प्रभाव को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता

यह घटनाक्रम सत्तारूढ़ दल के भीतर असहजता पैदा कर सकता है। कई विधायकों को पार्टी निष्ठा और मतदाताओं की अपेक्षाओं के बीच संतुलन बनाने की चुनौती से निपटना होगा। पंजाब की राजनीतिक संस्कृति में धार्मिक हुकुमनामे की अवहेलना का साहस कम ही जनप्रतिनिधि कर पाते हैं।

फिर यह विवाद उसी रणनीति के केन्द्र पर चोट करता है जिसे मान सरकार करती रही है। आम आदमी पार्टी सरकार लगातार अपनी पंथक साख मजबूत करने और खुद को सिखों का बड़ा हिमायती साबित करने का प्रयास करती रही है।

राजनीतिक विश्लेषक प्रोफेसर मनजीत सिंह का कहना है कि मान सरकार ने सिख प्रतीकों और धार्मिक पहचान के प्रति अपनी प्रतिबद्धता प्रदर्शित करने में कई बार अपने पूर्ववर्तियों को भी पीछे छोड़ देने की कोशिश की है। मनजीत कहते हैं, "वह यह साबित करने पर आमादा थे कि उनकी सरकार सिख हितों के लिए काम कर रही है। उन्होंने आनंदपुर साहिब में विधानसभा का विशेष सत्र बुलाया। अकाली दल ने भी कभी ऐसा नहीं किया।" विपक्ष ने इस विवाद का राजनीतिक लाभ उठाने में देर नहीं की। पूर्व मुख्यमंत्री चरणजीत सिंह चन्नी ने मान पर अकाल तख्त के प्रति अहंकारी रवैया अपनाने का आरोप लगाया है।

विपक्ष के नेता प्रताप सिंह बाजवा ने गंभीर विषय बताया, जिसके प्रभाव पंजाब की सीमाओं से कहीं आगे तक जा सकते हैं। उन्होंने कहा कि यह आदेश उस वीडियो की फोरेंसिक जांच के बाद जारी किया गया है, जिसने सिखों की भावनाओं को ठेस पहुंचाई है। शिरोमणि अकाली दल ने मान के इस्तीफे की मांग को लेकर आंदोलन शुरू कर दिया है।

हालांकि संवैधानिक स्थिति में कोई बदलाव नहीं आया है। भगवंत मान पंजाब विधानसभा में अपने बहुमत के आधार पर मुख्यमंत्री पद पर बने हुए हैं, किसी धार्मिक स्वीकृति के कारण नहीं। अकाल तख्त उन्हें सत्ता से नहीं हटा सकता।

संविधान आज भले ही मान की कुर्सी की रक्षा करता हो, लेकिन वह उनकी पार्टी को राजनीतिक हलचलों से नहीं बचा सकता। जैसे-जैसे पंजाब 2027 के विधानसभा चुनावों के करीब बढ़ रहा है, असली परीक्षा यह नहीं होगी कि मान इस विवाद से बच निकलते हैं या नहीं, बल्कि यह होगी कि क्या आम आदमी पार्टी उस चुनावी असर को झेल पाएगी जो पंजाब की सबसे प्रभावशाली धार्मिक संस्था के विरोध में खड़े दिखाई देने से पैदा हो सकता है। ■

इस समाचारपत्र का प्रकाशन **पवन कुमार बंसल** द्वारा हेराल्ड हाउस, 5-ए, बहादुर शाह जफर मार्ग, नई दिल्ली-11002 से **दि एसोसिएटेड जर्नल्स लिमिटेड**, हेराल्ड हाउस, 5-ए, बहादुर शाह जफर मार्ग, नई दिल्ली-110002 की ओर से संपादन **राजेश झा** द्वारा और मुद्रण आर. सी. मल्होत्रा द्वारा दि इंडियन एक्सप्रेस (प्रा.) लिमिटेड प्रेस, ए-8, सेक्टर-7, नोएडा- 201301, उत्तर प्रदेश से किया जा रहा है।

युद्ध और शांति

ईरान नेतन्याहू-ट्रंप की जोड़ी के आक्रमण के आगे इस तरह डटा रहा कि अमेरिका को हथियार डालने पड़े

अशोक स्वैन

डॉनल्ड ट्रंप ईरान युद्ध खत्म करने को बेताब थे और इसकी वजह भी थी। अमेरिका और ईरान के बीच 'सहमति पत्र' पर दस्तखत को व्हाइट हाउस कूटनीतिक जीत के तौर पर मना रहा है। लेकिन हकीकत यह है कि ट्रंप इस युद्ध से निकलने का रास्ता खोज रहे थे क्योंकि उन्हें उम्मीद ही नहीं थी कि यह युद्ध इतना खिंच जाएगा और न ही उन्होंने सोचा था कि इसके ऐसे नतीजे आएंगे।

इसका समय बहुत कुछ बयां करने वाला है। ट्रंप के 80वें जन्मदिन (रविवार, 14 जून) पर, पाकिस्तान के प्रधानमंत्री शहबाज शरीफ ने घोषणा की कि वाशिंगटन और तेहरान संघर्ष खत्म करने के ढांचे पर सहमत हो गए हैं। ट्रंप ने फौरन इसकी पुष्टि की। ट्रंप इस युद्ध को इसलिए समाप्त नहीं कर रहे थे क्योंकि उन्होंने अपने उद्देश्यों को हासिल कर लिया है। वह इसे इसलिए खत्म कर रहे थे क्योंकि युद्ध को जारी रखना रणनीतिक रूप से महंगा और राजनीतिक रूप से खतरनाक तो था ही, ट्रंप के लिए अमेरिका में अपने समर्थकों के सामने भी इसे वाजिब ठहराना असंभव ही हो गया था।

जब युद्ध शुरू हुआ, तो ट्रंप का मानना था कि जीत जल्दी मिल जाएगी।

वह गणना पूरी तरह गलत साबित हुई। सौ से अधिक दिनों के बाद भी, ईरानी सत्ता मजबूती से बनी हुई है। ढहने के बजाय, यह युद्ध से पहले की तुलना में अधिक मजबूत दिखती है। इस युद्ध ने ट्रंप और नेतन्याहू की उम्मीदों से बिल्कुल उलट परिणाम दिए। और तो और, ईरानी सरकार के आलोचक भी देश पर विदेशी हमला होते ही सरकार के पक्ष में लामबंद हो गए। राष्ट्रवाद अक्सर वहां सफल होता है जहां विचारधारा विफल हो जाती है। बाहरी आक्रामकता का सामना करने पर, आंतरिक मतभेद कम हो गए और प्रतिरोध एक एकजुट करने वाली शक्ति बन गया।

इस विडंबना को नजरअंदाज करना मुश्किल है। युद्ध ने उस इस्लामी गणराज्य को और अधिक स्थापित कर दिया है जिसे उसे सत्ता से बेदखल करना था, और इस समझौते का सबसे कड़ा विरोध ईरान के भीतर के कट्टरपंथियों की ओर से आया है जो मानते हैं कि अमेरिका के साथ बातचीत करने के बजाय उससे दो-दो हाथ करते रहते तो कहीं ज्यादा रियायतें मिल सकती थीं।

युद्ध को समाप्त करने की ट्रंप की इच्छा के पीछे उनकी दो चिंताएं थीं। पहली थी घरेलू राजनीति। यह युद्ध अमेरिका में बेहद अलोकप्रिय हो गया था। विशेष रूप से ट्रंप के समर्थकों ने उनके 'अमेरिका फर्स्ट' (अमेरिका पहले) के एजेंडे-आर्थिक राष्ट्रवाद, सीमा सुरक्षा और महंगे विदेशी झमेलों से बचने के वादों-के लिए वोट किया था। इसके बजाय, उन्होंने एक और 'पसंदीदा युद्ध' को राजनीतिक ध्यान और राष्ट्रीय संसाधनों को निगलते हुए देखा है।

ट्रंप की इस बेताबी के पीछेकी दूसरी बड़ी चिंता यूक्रेन है। वह चाहते थे कि यूक्रेन युद्ध खत्म हो। किसी अन्य कारण की तुलना में उनमें खुद को एक ऐसे महानायक के रूप में पेश करने की इच्छा है जिसने ऐसा कर दिखाया। लेकिन ईरान युद्ध उस महत्वाकांक्षा के आड़े आ रहा था। कूटनीतिक ऊर्जा को यूक्रेन पर केन्द्रित करने के बजाय, व्हाइट हाउस ने महीनों पश्चिम एशिया में बढ़ते संकट को संभालने में बिताए हैं। ट्रंप के एक और ऐसे अमेरिकी राष्ट्रपति के रूप में याद किए जाने का जोखिम है जो अपने पूर्ववर्तियों की तरह अमेरिकी वर्चस्ववादी युद्धों को लड़ने के उसी जाल में फंस गए, जिसने महाशक्ति के रूप में अमेरिका के पतन को तेज किया और 'मेक अमेरिका ग्रेट अगेन' के वादों को पूरा करने में बुरी तरह विफल रहे।

इस संघर्ष के सबसे महत्वपूर्ण परिणामों में से एक यह है कि ईरान ने अपने रणनीतिक प्रभाव की सीमा को फिर से खोज लिया है। होर्मुज जलडमरूमध्य को बंद करके तेहरान ने दिखा दिया कि वैश्विक अर्थव्यवस्था पर वह कितनी शक्ति का प्रयोग कर सकता है-शिपिंग मार्ग बाधित हो गए, आपूर्ति श्रृंखलाएं दबाव में आ गईं, तेल-गैस की कीमतें बढ़ गईं और मुद्रास्फीति का डर महाद्वीपों में फैल गया।

ईरान ने इस युद्ध से एक महत्वपूर्ण सबक सीखा हैः भूगोल ही शक्ति है। इस शिपिंग चोक पॉइंट, जो दुनिया का सबसे महत्वपूर्ण ऊर्जा गलियारा है, को नियंत्रित करने की क्षमता तेहरान को उसके आर्थिक आकार या सैन्य क्षमता से कहीं अधिक प्रभाव देती है। युद्ध ने ईरानी नेताओं को दिखा दिया है कि उनके पास न केवल अपने क्षेत्रीय विरोधियों बल्कि पूरी अंतरराष्ट्रीय प्रणाली पर इसकी कीमत थोपने की क्षमता है। ईरान ने यह भी सीखा है कि तनाव बढ़ाकर बातचीत के लिए मजबूर किया जा सकता है। ईरान का नेतृत्व अब जानता है कि उसने असाधारण सैन्य दबाव का सफलतापूर्वक विरोध किया और अमेरिका को कूटनीतिक समाधान खोजने के लिए मजबूर किया। यह ज्ञान भविष्य के संकटों पर उसकी बातचीत के तौर-तरीकों को आकार देगा। यदि इजरायल ईरान पर एक और बड़ा हमला करता है या लेबनान में सैन्य अभियानों को तेज करता है, तो तेहरान द्वारा उस संयम को दिखाने की संभावना कम है जो पिछले संघर्षों की विशेषता थी।

यह वास्तविकता जिनेवा समझौते से जुड़े सबसे महत्वपूर्ण सवाल को उठाती हैः क्या यह समझौता टिक पाएगा?

ब्लूमबर्ग की समीक्षा से पता चलता है कि अमेरिका-ईरान समझौता ज्ञापन के तहत ईरान को तत्काल तेल बिक्री के अधिकार और 300 अरब डॉलर के पुनर्निमाण एवं विकास कोष तक पहुंच प्राप्त होगी। मुख्य विवाद अनसुलझे बने हुए हैं, जिनमें लेबनान में इसराइल की भूमिका, ईरान के समृद्ध यूरेनियम के भंडार की स्थिति और प्रतिबंधों से राहत की समयसीमा शामिल है।

लेकिन इन विशिष्टताओं से अधिक, असली चुनौती यह है कि क्या यह समझौता टिक पाएगा। ईरान प्रतिबंधों से राहत, जब्त संपत्तियों तक पहुंच और भविष्य की सैन्य कार्रवाइयों के संबंध में गारंटी की मांग करेगा। अमेरिका ईरान की परमाणु गतिविधियों पर सीमाएं और क्षेत्रीय स्थिरता के संबंध में आश्वासन चाहेगा। दोनों पक्ष एक-दूसरे को अत्यधिक अविश्वास और दुर्भावना से काम करने की दृष्टि से देखेंगे। एक बड़ा खतरा तीसरे पक्ष- बेंजामिन नेतन्याहू की ओर से है। वर्षों से, ईरान के साथ टकराव उनके राजनीतिक जीवन के केन्द्र में रहा है। बहुत कम इसराइली नेताओं ने ईरान को क्षेत्रीय सुरक्षा के लिए निर्णायक खतरे के रूप में चित्रित करने में इतनी राजनीतिक पूंजी का निवेश किया है। अमेरिका और ईरान के बीच का समझौता उस नैरेटिव को कमजोर करता है, साथ ही एक ऐसी कूटनीतिक प्रक्रिया से इसराइल के अलगाव को उजागर करता है जो सीधे उसके सुरक्षा माहौल को प्रभावित करती है।

इसराइल के भीतर की प्रतिक्रियाएं इस समस्या की गहराई को दिखाती हैं। विपक्ष के नेताओं ने इस समझौते को एक कूटनीतिक हार बताया है। यहां तक कि नेतन्याहू के अपने धुर दक्षिणपंथी गठबंधन के सदस्यों ने संकेत दिया है कि इसराइल खुद को इस समझौते से बंधा नहीं मानता है। इसराइली मंत्रियों ने खुले तौर पर कहा है कि लेबनान में सैन्य अभियान जारी रह सकते हैं।

यह स्थायी शांति की उम्मीद करने वाले किसी भी व्यक्ति को चिंतित करना चाहिए। लेबनान इस समझौते में सबसे खतरनाक फॉल्ट लाइन का प्रतिनिधित्व करता है। ईरान ने साफ कर दिया है कि युद्ध विराम के लिए अमेरिका से समझौता और लेबनान में आक्रामकता खत्म करना दो अलग बातें हैं। इस बीच, इसराइल इस बात पर जोर देता है कि वह सैन्य स्थिति बनाए रखेगा और हिजबुल्लाह के खिलाफ कार्रवाई के लिए आजाद होगा।

अगर इसराइल लेबनान में नया सैन्य अभियान शुरू करता है, तो ईरान पर प्रतिक्रिया देने का भारी घरेलू दबाव होगा। कट्टरपंथी जो पहले से ही इस समझौते का विरोध करते हैं, वे तर्क देंगे कि अमेरिका या तो अपने सबसे करीबी सहयोगी को रोक नहीं सकता या रोकना नहीं चाहता। पूरे कूटनीतिक ढांचे की विश्वसनीयता कुछ ही दिनों में बिखर सकती है।

ट्रंप इस जोखिम को जानते हैं। उन परिस्थितियों के कारण बातचीत के लिए मजबूर होने के बाद जिनकी उन्होंने उम्मीद नहीं की थी, अब उनके पास एक और तनाव को रोकने का एक मजबूत प्रोत्साहन है। नवंबर के चुनाव से पहले एक नया संघर्ष उनके लिए राजनीतिक रूप से विनाशकारी होगा। यह उनकी रणनीतिक विफलता की बढ़ती धारणाओं को रेखांकित करेगा। इस कारण से, ट्रंप कम-से-कम फिलहाल तो युद्ध में उलझने से बचने के हरसंभव प्रयास करेंगे। लेकिन क्या उनके पास नेतन्याहू को रोकने की राजनीतिक इच्छाशक्ति है, यह कहना मुश्किल है। ■

वैलेंसिया के फलास फेस्टिवल में झूठी महत्वाकांक्षाओं को दर्शाते ट्रंप को नेतन्याहू को गोद में लिए हुए दिखाने वाले कार्ड बोर्ड

> ट्रंप जानते हैं कि ईरान से समझौते की सबसे बड़ी समस्या नेतन्याहू हैं। अगर नेतन्याहू ने कोई हमला किया तो उसकी आंच उन पर भी आएगी। लेकिन घरेलू कारणों से ट्रंप फिलहाल तो किसी युद्ध में उलझने से बचेंगे। लेकिन क्या उनके पास नेतन्याहू को रोकने की इच्छाशक्ति है, कहना मुश्किल है

अशोक स्वैन, स्वीडन की उप्सला यूनिवर्सिटी में पीस एंड कॉन्फ्लिक्ट रिसर्च के प्रोफेसर हैं

ढाका में स्वागत, दिल्ली में तनातनी

भारत-बांग्लादेश संबंधों में विरोधाभास है जो व्यवहार में तारतम्यता की कमी की ओर साफ इशारा करता है

सौरभ सेन

जब भारत के बांग्लादेश में उच्चायुक्त दिनेश त्रिवेदी ने कोलकाता से ढाका की पारंपरिक 45 मिनट की हवाई यात्रा के बजाय सड़क मार्ग से जाने का निर्णय लिया, तो सभी ने इसकी सराहना की। वह पेट्रापोल-बेनापोल से अंतरराष्ट्रीय सीमा पार कर पैदल गए और पद्मा पुल से होते हुए ढाका पहुंचे। भारत-बांग्लादेश संबंधों की मौजूदा नाज़ुक स्थिति को देखते हुए, दक्षिण एशिया के विश्लेषकों से त्रिवेदी की इस यात्रा के राजनीतिक संकेत छिपे नहीं रहे।

ढाका पहुंचकर त्रिवेदी ने अपनी यात्रा का संस्मरण साझा किया। उन्होंने कहा, 'बांग्लादेश में प्रवेश करते ही मुझे बिल्कुल नहीं लगा कि मैं किसी विदेशी सरजमीन पर हूं। भारत और बांग्लादेश मजबूत लोकतंत्र हैं। हम जो कुछ भी करेंगे, हमें एकजुट होकर करना होगा। हम अलगाव में रहकर ताकतवर नहीं बन सकते।' उन्होंने इस बात पर खास जोर दिया कि अगर दोनों देशों की 160 करोड़ आबादी अपने संसाधनों को मिलाकर एक शक्तिशाली आर्थिक गुट बना ले, तो इससे विकास की असीम आर्थिक संभावनाओं का नया दौर शुरू हो सकता है।

पहली नजर में त्रिवेदी की टिप्पणियों में कुछ भी आपत्तिजनक नहीं था; आखिर राजनयिक और राजदूत अक्सर समझ और सौहार्द को बढ़ावा देने के लिए ऐसे रूपकों का उपयोग करते हैं, खासकर उन लोगों के बीच जो एक साझा विरासत साझा करते हैं।

हालांकि, राजनीतिक रूपकों का उपयोग करने में माहिर त्रिवेदी को यह अंदाजा नहीं था कि उनकी यह टिप्पणी एक बड़ा राजनयिक विवाद का कारण बन जाएगी। इसने उन विभिन्न हितधारकों की अंतर्निहित चिंताओं को उजागर कर दिया जिनके लिए इस द्विपक्षीय संबंध की दिशा, आकार और गहराई मायने रखती है। बांग्लादेश के सबसे बड़े विपक्षी दल जमात-ए-इस्लामी के अमीर शफीकुर रहमान और इसके महासचिव मिया गुलाम परवार इस पर प्रतिक्रिया देने वाले सबसे पहले व्यक्ति थे।

जमात-ए-इस्लामी ने औपचारिक बयान जारी कर कहा कि त्रिवेदी की टिप्पणियां बांग्लादेश की राष्ट्रीय संप्रभुता और क्षेत्रीय अखंडता के खिलाफ थीं। उन्होंने मांग की कि ढाका की मौजूदा सरकार इस बात पर तुरंत स्पष्टीकरण मांगे कि भारत और बांग्लादेश के 'एकजुट होने' से त्रिवेदी का क्या तात्पर्य था। जमात अमीर के विदेश मामलों के सलाहकार मीर अहमद बिन कासिम ने 'संडे नवजीवन' के साथ बातचीत में कहा, 'यह भ्रम तब पैदा हुआ जब कुछ मीडिया आउटलेट्स ने भ्रामक सुर्खियां प्रसारित कीं जो बाद में वायरल हो गईं। बांग्लादेश के नेता प्रतिपक्ष ने किसी भी भ्रम से बचने के लिए स्पष्टीकरण की मांग की है।'

जहां एक तरफ त्रिवेदी ढाका में एकजुटता की बात कर रहे थे और रहमान स्पष्टीकरण मांग रहे थे, वहीं इसके ठीक एक दिन बाद, 14 जून को दिल्ली में एक अलग ही कहानी सामने आई। बांग्लादेश के प्रधानमंत्री के नीति, रणनीति और सूचना सलाहकार डॉ. जाहिद उर रहमान इंडियन ओशन रिम एसोसिएशन के वरिष्ठ अधिकारियों की समिति की 28वीं बैठक में अपने देश के प्रतिनिधिमंडल का नेतृत्व करने दिल्ली पहुंचे थे।

लेकिन नई दिल्ली के इंदिरा गांधी अंतरराष्ट्रीय हवाई अड्डे पर आव्रजन (इमिग्रेशन) अधिकारियों ने डॉ. रहमान को रोक दिया, जबकि उन्हें मंत्री का दर्जा प्राप्त है और उनसे ढाई घंटे तक पूछताछ की गई। वह राजनयिक पासपोर्ट के बजाय सार्क वीजा वाले एक सामान्य बांग्लादेशी पासपोर्ट पर यात्रा कर रहे थे। आधिकारिक सूत्रों के हवाले से मीडिया रिपोर्टों में कहा गया कि उनके यूट्यूब चैनल 'जाहिद्स टेक' पर भारत से जुड़े मुद्दों और नीतियों पर की गई तीखी आलोचनात्मक टिप्पणियों के इतिहास के कारण उनका नाम आव्रजन की ब्लैकलिस्ट में दर्ज था।

बांग्लादेश उच्चायोग द्वारा भारत के विदेश मंत्रालय को पहले ही अग्रिम राजनयिक सूचनाएं भेजे जाने के बावजूद, शुरुआत में आव्रजन क्लीयरेंस को रोक दिया गया। हालांकि बाद में उच्च अधिकारियों ने उन्हें आगे बढ़ने की अनुमति दे दी, लेकिन उन्हें अपने फैसले पर पुनर्विचार करने को कहा। इससे हताश डॉ. रहमान ने भारत में प्रवेश करने से इनकार कर दिया, अपना पासपोर्ट लिया और कोलंबो के रास्ते ढाका लौट गए।

इस घटना के बाद, बांग्लादेश के विदेश मंत्रालय ने ढाका की 'गहरी निराशा' और तीखी नाराजगी दर्ज कराने के लिए भारत के उप-उच्चायुक्त पवन बाधे को तलब कर औपचारिक विरोध दर्ज कराया। बांग्लादेश के विदेश मंत्री खलीलुर रहमान ने सार्वजनिक रूप से हवाई अड्डे की इस घटना को 'अनपेक्षित और खेदजनक' करार दिया।

*

त्रिवेदी की 12 जून की ढाका यात्रा ने जहां एक निर्बाध सीमा पार आवाजाही का संकेत दिया था, वहीं भारत-बांग्लादेश सीमा पर नो-मैन लैंड में हजारों लोग- महिलाएं, बच्चे और बुजुर्ग- अब भी फंसे हैं। वे दिन-रात या तो खुले आसमान के नीचे या पेड़ों के नीचे दुबक कर बिता रहे हैं, जहां शौचालय की भी सुविधा नहीं है और स्थानीय प्रशासन या स्वयंसेवकों द्वारा बहुत कम मात्रा में भोजन और पानी उपलब्ध कराया जा रहा है।

भारतीय प्रशासन ने उन्हें अवैध बांग्लादेशी प्रवासी करार दिया है और सीमा सुरक्षा बल (बीएसएफ) को उन्हें वापस बांग्लादेश में 'धकेलने' का आदेश दिया है। दूसरी ओर, बॉर्डर गार्ड्स बांग्लादेश (बीजीबी) ने उन्हें स्वीकार करने से इनकार कर दिया है, और इसके लिए स्टैंडर्ड ऑपरेटिंग प्रोसीजर का हवाला दिया है जिसके तहत बांग्लादेशी अधिकारियों द्वारा पहचान का सत्यापन जरूरी है।

इस 'पुश बैक' नीति ने राजनयिक तनाव पैदा कर दिया है और नई दिल्ली में 8 जून को हुई बीएसएफ और बीजीबी के बीच 57वीं महानिदेशक स्तर की बैठक में यह मुद्दा प्रमुखता से छाया रहा। मौजूदा राजनयिक परंपरा से हटकर, वार्ता के समापन पर कोई संयुक्त प्रेस कॉन्फ्रेंस या मीडिया ब्रीफिंग नहीं की गई। इसके बजाय, दोनों बलों ने अलग-अलग आधिकारिक बयानों के माध्यम से

परिणामों की जानकारी देना चुना। यह असामान्य चुप्पी संवेदनशील द्विपक्षीय मतभेदों को सार्वजनिक या मीडिया के बयानों में बदलने से रोकने की एक सतर्क राजनयिक रणनीति थी।

ऐसा लगता है कि भारत ने इस मामले में एक खंडित दृष्टिकोण अपनाया है। चूंकि इस पुश बैक प्रक्रिया में कई एजेंसियां शामिल हैं, इसलिए हर एजेंसी केवल अपना निर्धारित काम कर रही है। पुश बैक प्रक्रिया में शामिल एक वरिष्ठ पुलिस अधिकारी ने 'संडे नवजीवन' को बताया, 'हम बस इन लोगों को बीएसएफ के हवाले कर देते हैं। वे ही यह बताने में सक्षम होंगे कि वे बाद में इन लोगों के साथ क्या करते हैं।' इस विषय पर बीएसएफ या कोलकाता और नई दिल्ली में बांग्लादेशी राजनयिक मिशनों से प्रतिक्रिया लेने के बार-बार किए गए प्रयास असफल रहे।

दावों और प्रति-दावों के इस टकराव के बीच वे परिवार फंसे हुए हैं जो बेघर और राज्यविहीन हो चुके हैं। इस क्षेत्र में सक्रिय स्थानीय निवासियों और गैर-सरकारी संगठनों के कार्यकर्ताओं ने बताया कि ऐसे सैकड़ों प्रवासी रातों-रात गायब हो चुके हैं। वे रात के अंधेरे में न जाने किस दिशा में चले गए-प्रशासनिक अनिश्चितता, कठिनाइयों और इस खींचतान को सहन करने में असमर्थ होकर।

डॉक्यूमेंट्री फिल्म निर्माता द्वैपायन बनर्जी की एक सोशल मीडिया पोस्ट सीमा के इस बदतर हालात को बेहद मार्मिक ढंग से बयां करती हैः 'हाशिये पर मौजूद, बांग्लाभाषी मुस्लिम घरेलू कामगारों, निर्माण मजदूरों और कचरा बीनने वालों के लिए, एक बिना दस्तावेज वाले आर्थिक प्रवासी और एक वैध घरेलू नागरिक के बीच की लकीर धुंधली हो चुकी है। सीमा अब एक कानूनी दायरा नहीं रह गई है। यह अब एक ऐसे प्रशासन के लिए एक अनौपचारिक, एकतरफा निकास द्वार बन चुकी है जो नागरिकता को एक मौसमी सफाई अभियान की तरह मान रहा है।' ■

ढाका पहुंचने के बाद बांग्लादेश में भारत के उच्चायुक्त दिनेश त्रिवेदी की टिप्पणियां कूटनीतिक विवाद का कारण बनीं

> भारत-बांग्लादेश सीमा पर हजारों लोग- महिलाएं, बच्चे और बुजुर्ग- फंसे हैं। वे दिन-रात या तो खुले आसमान के नीचे या पेड़ों के नीचे दुबक कर बिता रहे हैं जहां शौचालय की भी सुविधा नहीं है और उन्हें बहुत कम भोजन और पानी मिल पा रहा है

सौरभ सेन कोलकाता में रहने वाले स्वतंत्र टिप्पणीकार हैं

ग्रामीण भारत पानी के कैसे भारी संकट में है, इसका शायद नियामकों को अंदाज नहीं है या फिर वे सच्चाई से मुंह चुराते हैं

जब नल का जल बस सपना रह जाए

रश्मि सहगल

छत्तीसगढ़ के मोहंदी गांव में पानी लेकर जाती महिला (बाएं)। महासमुंद में रेत की खुदाई से निकले पानी को बरतनों में भरती महिलाएं

छत्तीसगढ़ के सुदूर गांव रेवा में, 60 साल की बुद्धादेवी का पूरा दिन पानी की तलाश में निकल जाता है। उनके पड़ोसी का एक चालू बोरवेल है, लेकिन एक किलोमीटर दूर। वह सुबह-सुबह एक बर्तन सिर पर, दूसरा हाथ में लेकर निकल पड़ती हैं। मानती हैं कि चिंता ने उनकी रातों की नींद उड़ा दी है। सोलर चालित सरकारी हैंडपंप से पानी नदारद है? गर्मियों में कुआं सूख जाता है। जल जीवन मिशन वाले नल में पानी की एक बूंद भी नहीं ।

मध्य प्रदेश में पानी की किल्लत इतनी ज्यादा है कि धार जिले के उत्तावा गांव की महिलाएं भीषण गर्मी में कई मील पैदल चलती हैं, और पानी भरने के लिए उन्हें पथरीली खाई में 50 फीट नीचे खतरनाक रास्ते से उतरना होता है। जल जीवन मिशन के तहत दो साल पहले जो पाइपलाइन पड़ी थी, उसमें पानी नहीं आता। पाइप से पानी पहुंचाने पर करोड़ों का खर्च पानी में बह गया।

मध्य प्रदेश के उमरिया और पन्ना जिलों में हैंडपंप भीषण गर्मी और लू से सूख गए हैं, और लोग सेहत जोखिम में डालकर भी दूषित पानी पीने को मजबूर हैं। मध्य प्रदेश में समाजवादी जन परिषद के कार्यकर्ता फाग्राम इस जल संकट की वजह भूजल का अत्यधिक दोहन और पानी को फिर से भरने के पारंपरिक तरीकों का लगातार खत्म होना बताते हैं।

पश्चिमी भारत में भी हालात खराब हैं। महाराष्ट्र के ग्रामीण इलाकों का बड़ा हिस्सा, जिसमें मराठवाड़ा, विदर्भ, लातूर, उस्मानाबाद, बीड, जालना, नासिक, पुणे और सतारा जैसे जिले शामिल हैं, भयावह जल संकट का शिकार हैं।

औरंगाबाद जिले के किसान शिवाजी गायकवाड़ बताते हैं, "633 से ज्यादा गांव और 1,652 बस्तियां निजी टैंकरों पर निर्भर हैं, लेकिन ये महंगे हैं, और अक्सर इनके लिए आठ से दस दिन तक इंतजार करना पड़ता है। पहले गांव की नदियों पर निर्भरता रहती थी, लेकिन अब सभी नदियों में बड़े पैमाने पर रेत खनन हो रहा है, जिससे जमीन में पानी रिसता नहीं और नदियां सूख रही हैं।" नासिक के बोरिचिवरी गांव में तो महिलाओं को कीचड़ वाला पानी भरने के लिए भी रस्सियों के सहारे खतरनाक कुओं में उतरना पड़ता है।

लीलाबाई कहती हैं, "गर्मी के दो महीनों में, हमारा सारा समय पानी की तलाश में निकल जाता है। ऐसा पानी पीने से हमारे बच्चे बीमार पड़ रहे हैं, लेकिन कोई और चारा भी तो नहीं। शाम तक, अगर चार बाल्टी पानी मिल जाए, तो खुद को खुशकिस्मत मानती हूं, लेकिन थकान तोड़ देती है।"

मुश्किल से मिली पानी की ये बाल्टियां, आवास और शहरी मामलों के मंत्रालय द्वारा हर ग्रामीण परिवार के लिए सुझाए गए 55 लीटर पानी के न्यूनतम स्तर का आधा भी पूरा नहीं कर पाती हैं।

अंबेगांव, जुन्नार, भोर, मुलशी और पुरंदर के ग्रामीण इस विडंबना से अनजान नहीं हैं कि भारी बारिश वाले इस इलाके में ऐसा जल संकट है, जबकि पुणे के शहरी और औद्योगिक केन्द्रों को पानी की आपूर्ति यहीं के जलाशयों से होती हैं।

अंबेगांव तालुका के भीमाशंकर मंदिर क्षेत्र के अनेक परिवारों के लिए पानी लाना रोज-रोज का संघर्ष है। भीमाशंकर के पास एकलहारे गांव के निवासी रूपेश अंबेकर ने द इंडियन एक्सप्रेस (15 जून 2026) को बताया, "हमारा इलाका मुख्य रूप से आदिवासी आबादी वाला है। दूरदराज के गांवों की महिलाओं को पानी की तलाश में खड़ी, पथरीली पहाड़ियां पार करनी पड़ती हैं। वह मुश्किल रास्तों से सिर पर घड़े ढोकर लौटती हैं।" (बताने की जरूरत नहीं कि भारी बोझ उठाने से रीढ़ की हड्डी चोटिल हो सकती है।)

अंबेकर कहते हैं, "भीमाशंकर में हर साल लगभग 2,000 मिमी बारिश होती है। डिंभे बांध पास में ही है, फिर भी खमकरवाड़ी, धामनगांव और दूसरे कई गांवों में हर गर्मी में पानी की भारी किल्लत होती है। करीब पांच साल पहले पानी की टंकी और पाइपलाइन का नेटवर्क बनाया गया था, लेकिन पानी अभी तक हम तक नहीं पहुंचा है।"

यह शिकायत इस इलाके के प्रायः हर गांवों की है। धनवाले गांव के मारुति धनवाले ने बताया, "हमारे गांव से निकलने वाली धाराएं नीरा-देवघर बांध में जाती हैं, जो बारामती, इंदापुर और पुरंदर के कुछ हिस्सों में पानी पहुंचाता है। बांध हमारे ठीक सामने है, लेकिन हम पानी के लिए जूझ रहे हैं।" औरंगाबाद के जल और भूमि प्रबंधन संस्थान के पूर्व प्रोफेसर और जल प्रबंधन कार्यकर्ता प्रदीप पुरंदारे, महाराष्ट्र के मौजूदा जल संकट के लिए गन्ने की अत्यधिक खेती को जिम्मेदार मानते हैं, क्योंकि गन्ना उगाने में अत्यधिक पानी खर्च होता है।

पुरंदारे कहते हैं, "नेताओं ने अपने-अपने इलाकों में पानी से जुड़ी व्यवस्थाओं पर कब्जा कर रखा है। वे सिंचाई अधिकारियों की नियुक्ति करते हैं जो फिर उनकी ही सुनते हैं। जमीनी स्तर पर राज्य सरकार का बहुत कम नियंत्रण है।"

झारखंड में भी हालात अच्छे नहीं हैं। चतरा में आदिवासी रेत के गड्ढों से पानी निकालने को अभिशप्त हैं, और कोई अन्य विकल्प न होने से अक्सर उन्हें दूषित पानी पीना पड़ता है। खरसावां के कोमय जैसे गांवों में, लोग पीने के पानी के लिए पहाड़ी झरनों और 'चुआ' कहे जाने वाले अस्थायी जल स्रोतों पर निर्भर रहते हैं। बारिश के मौसम में ये स्रोत गंदे हो जाते हैं, जिससे ग्रामीणों को साफ पानी लाने के लिए दूर-दूर भटकना पड़ता है। सेंट्रल वॉटर कमीशन की रिपोर्ट कहती है कि दक्षिण में कर्नाटक, तेलंगाना और आंध्र प्रदेश के ग्रामीण इलाकों के सभी बड़े जलाशयों में उनकी क्षमता का 20 प्रतिशत से भी कम पानी है और कुछ बांधों में तो क्षमता का 5 प्रतिशत पानी भी नहीं बचा है।

हैदराबाद के जल विशेषज्ञ सत्यनारायण बोलिसेटी कहते हैं, "हर मुख्यमंत्री के डैशबोर्ड पर बांधों, नदियों और जलाशयों में जल-स्तर के रोजमर्रा के आंकड़े होते हैं। उनमें से कोई भी इस बात से अनजान नहीं है कि जलापूर्ति की हालत किस हद तक खराब है।"

जल अधिकार फाउंडेशन (उत्तर भारत) के समन्वयक मान हरियाणा का उदाहरण देते हैं कि किस तरह चार दशकों में यह राज्य पानी की अधिकता वाले राज्य से पानी की कमी वाले राज्य में बदल गया।

मान कहते हैं, "1985 तक, हरियाणा में नहरों का एक अच्छा सिस्टम था जो पीने का पानी और जल निकासी, दोनों सुविधाएं देता था। अब इन नहरों की भयावह अनदेखी हो रही है; इनपर अवैध कब्जे हैं और सही रखरखाव न होने से पानी के बहाव में भारी नुकसान और वाष्पीकरण से पानी बर्बाद होता है।"

वह गुरुग्राम और फरीदाबाद जैसे बड़े शहरों को पानी देने के लिए गुरुग्राम और जवाहरलाल नेहरू नहरों के इस्तेमाल की आलोचना करते हैं। कहते हैं, "हमारे गांवों और कस्बों में स्थानीय प्रशासन को हमारे स्थानीय जल स्रोत फिर से जीवित करने के लिए काम करना चाहिए।"

> हर मुख्यमंत्री के डैशबोर्ड पर बांधों, नदियों और जलाशयों में जल-स्तर के आंकड़े रोजमर्रा आधार पर दर्ज होते हैं। उनमें से कोई भी इस बात से शायद ही अनजान हो कि इन इलाकों में पानी की सप्लाई की स्थिति कितनी गंभीर है

उत्तर प्रदेश जैसा जल-समृद्ध शायद ही कोई राज्य रहा हो, लेकिन एक विस्तृत जांच बताती है कि यूपी भी अब ऐसी स्थिति में पहुंच चुका है जहां से वापसी मुश्किल है, क्योंकि इसने अपने उपलब्ध भूजल का कम-से-कम 80 फीसद हिस्सा इस्तेमाल कर लिया है। ज्यादातर दूसरे राज्यों की तरह, यूपी भी जितना ताजा पानी दोबारा जमा कर सकता है, उससे कहीं ज्यादा निकाल रहा है। पड़ोसी राज्य उत्तराखंड में यह समस्या अब पानी के लिए झगड़ों में बदल रही है। 13 जून को, देहरादून के ग्रामीण इलाके सहसपुर में सिंचाई के विवाद को लेकर पड़ोसियों ने एक व्यक्ति की हत्या कर दी और उसके परिवार के सदस्यों पर हमला किया।

देवप्रयाग के हिंसरियाखाल और पाटाखाल इलाकों के ग्रामीणों ने अपनी दुश्वारियां उजागर करने के लिए सड़कों पर उतरकर विरोध प्रदर्शन किए। प्रशासनिक दफ्तर घेरे जा रहे हैं। ग्रामीणों का कहना है कि उनकी जल-जरूरतें पूरी नहीं हुईं तो आंदोलन और तेज करेंगे।

विश्व मौसम विज्ञान संगठन ने चेतावनी दी है कि प्रशांत महासागर में अल नीनो के कारण भारत में औसत से कम बारिश होगी। यह विनाशकारी साबित होगा। इससे न सिर्फ गर्मी और सूखे की समस्या बढ़ेगी, बल्कि हमारी खेती, पावर ग्रिड और पहले से ही कमजोर जल सुरक्षा पर भी अतिरिक्त दबाव पड़ेगा। बोलिसेट्टी कहते हैं, "आईएमडी द्वारा जारी और इनसेट-3डीएस सैटेलाइट इमेजिंग से सत्यापित ताजा आंकड़ों से पता चलता है कि प्रायद्वीप के ऊपर आसमान पूरी तरह से साफ और बिना बादलों वाला है, जबकि इस समय मौसमी बारिश अपने चरम पर होनी चाहिए थी। यह अच्छे संकेत नहीं हैं।" ■

गायब बादल और रोते-बिलखते खेत

हरजिंदर

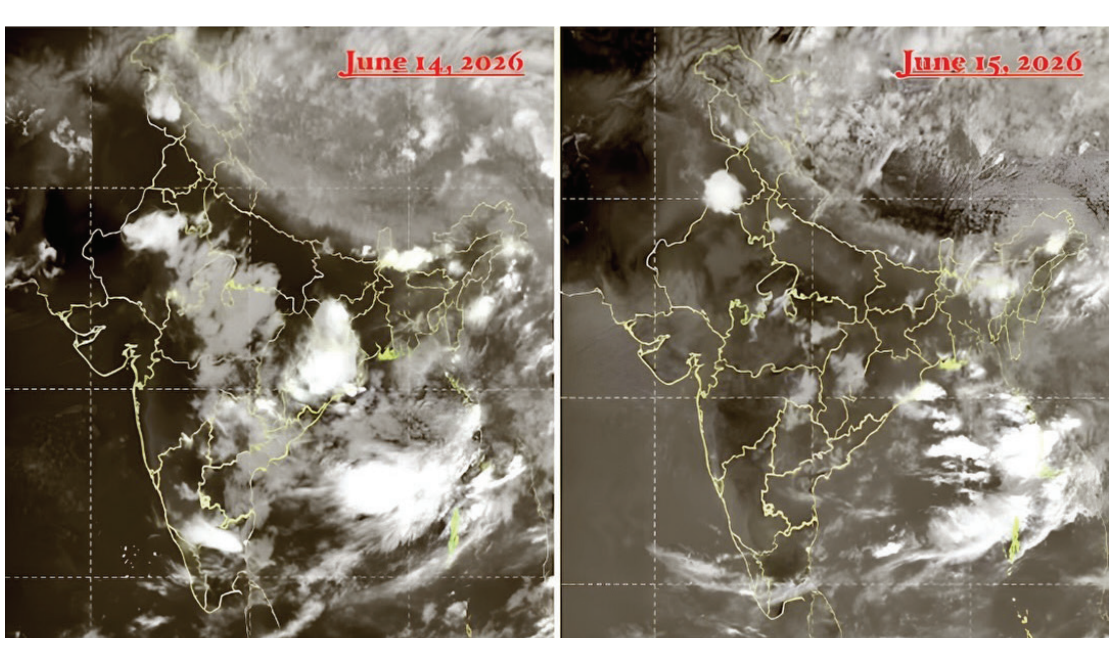

दक्षिण-पश्चिम मानसून अप्रत्याशित रूप से कमजोर दौर में प्रवेश कर गया है। इससे बारिश में 64 प्रतिशत तक की कमी की आशंका है

उपग्रह से मिली तस्वीरों में मानसून के बादल अदृश्य हो चके हैं हैं। मौसम विभाग और अन्य एजेंसियों की रिपोर्ट के बता रही हैं कि दक्षिण-पश्चिम मानसून देश के बड़े हिस्सों में अचानक कमजोर पड़ गया है। ऊपरी वायुमंडल में हवा के पैटर्न में बदलाव से खरीफ बुवाई के महत्वपूर्ण मौसम की शुरुआत में ही मानसून में विराम लग गया है।

इस समय जब मानसून के पहले का मौसम लोगों को पसीने से तर कर रहा है, उस आशंका की पुष्टि हो चुकी है, जिसे लेकर लोग डर रहे थे। अल नीनो आधिकारिक रूप से स्थापित हो चुका है। वैज्ञानिक चेतावनी दे रहे हैं कि आगे चलकर यह एक शक्तिशाली 'सुपर' अल नीनो घटना का रूप भी ले सकता है।

ग्रीष्मकालीन मानसून देश की कुल सालाना वर्षा में लगभग 82 प्रतिशत योगदान देता है। इसमें 10-20 प्रतिशत की कमी भी कृषि के लिए आफत बन सकती है, ग्रामीण रोजगारों को नुकसान पहुंचा सकती है और आर्थिक विकास को धीमा कर सकती है। इस बार मौसम विभाग ने 90 प्रतिशत यानी सामान्य से कम मानसून का अनुमान लगाया है। केन्द्र सरकार ने पहले ही 150-200 संवेदनशील जिलों को विशेष निगरानी में रखा है, क्योंकि अगस्त और सितंबर में वर्षा की कमी से कृषि संकट का खतरा हो सकता है।

भारत के सामने खड़ा संकट केवल कमजोर मानसून तक सीमित नहीं है। यह अल नीनो हमें याद दिला रहा है कि भरोसेमंद मानसून का युग अब समाप्ति की ओर है। देश अब किसी अस्थायी मौसमीय झटके से नहीं जूझ रहा, बल्कि उस स्थिति से गुजर रहा है जिसे कई विशेषज्ञ स्थायी "जल दिवालियेपन" (वॉटर बैंकरप्सी) की अवस्था बताते हैं।

संयुक्त राष्ट्र ने चेतावनी भी दी है कि दुनिया के कई हिस्से "जल दिवालियेपन" के दौर में प्रवेश कर रहे हैं, जहां भूजल भंडार और मिट्टी की नमी प्रकृति द्वारा पुनर्भरण किए जाने की क्षमता से कहीं तेज गति से समाप्त हो रहे हैं।

ये चेतावनी भारत के लिए काफी अहम है। दुनिया की लगभग 17 प्रतिशत आबादी का घर होने के बावजूद, भारत के पास विश्व के मीठे जल संसाधनों का केवल 4 प्रतिशत हिस्सा है। इसलिए यह संकट भारत पर सबसे भारी है।

केन्द्रीय जल आयोग के अनुसार, भारत के पास लगभग 1,123 अरब घन मीटर (बीसीएम) उपयोग योग्य जल संसाधन हैं। इनमें से 690 बीसीएम सतही जल से और 433 बीसीएम भूजल से प्राप्त होते हैं। कृषि इन संसाधनों का लगभग 80 प्रतिशत उपभोग करती है, जबकि घरेलू और औद्योगिक उपयोगकर्ता बाकी 20 प्रतिशत साझा करते हैं। कृषि केवल पानी की उपभोक्ता नहीं है वह भारत की जल अर्थव्यवस्था की सबसे बड़ी "ऋणी" भी है।

भारत के जल संकट का सबसे चिंताजनक पहलू दिखाई नहीं देता। पिछले पांच दशकों में भूजल की खपत लगभग 500 प्रतिशत बढ़ चुकी है। जिससे 1980 के दशक के बाद से देश में औसत भूजल स्तर आठ मीटर से अधिक नीचे चला गया है।

> संकट केवल कमजोर मानसून तक सीमित नहीं है। अल नीनो याद दिला रहा है कि भरोसेमंद मानसून का युग समाप्ति की ओर है। देश उस स्थिति से गुजर रहा है जिसे कई विशेषज्ञ स्थायी जल दिवालियेपन की अवस्था बताते हैं

इसका सबसे बड़ा उदाहरण पंजाब है। कभी हरित क्रांति की जन्मभूमि कहलाने वाले इस राज्य में भूजल स्तर लगातार गिरता गया है। वर्ष 1973 से 2016 के यहां पानी 4.82 मीटर की गहराई पर मिल जाता था। अब 14.55 मीटर पर भी मुश्किल से मिलता है। यह क्षरण धीमा और अदृश्य, लेकिन विनाशकारी है। बाढ़ की तरह यह अचानक नहीं आता, बल्कि धरती के भीतर चुपचाप फैलता है और वर्ष-दर-वर्ष कृषि की पारिस्थितिक नींव को कमजोर करता रहता है। विडंबना यह है कि जिन नीतियों ने कभी भारत की खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित की थी, वही आज उसकी जल असुरक्षा में योगदान दे रही हैं।

अनुसंधान लगातार संकेत दे रहे हैं कि सरकारी खरीद नीतियों और न्यूनतम समर्थन मूल्य (एमएसपी) व्यवस्था ने अनजाने में एक पारिस्थितिक जाल तैयार कर दिया है। चावल और गेहूं की सुनिश्चित खरीद ने किसानों को उन फसलों की खेती के लिए प्रोत्साहित किया, जिन्हें भारी मात्रा में पानी की आवश्यकता होती है। आज चार फसलें- धान, गन्ना, गेहूं और कपास हर साल लगभग 700 बीसीएम पानी की खपत करती हैं, जो भारत के कुल उपयोग योग्य जल संसाधनों का लगभग 60 प्रतिशत है। महज एक किलोग्राम चावल पैदा करने के लिए लगभग 2,500 लीटर पानी की आवश्यकता होती है।

यह कहानी केवल पंजाब तक सीमित नहीं है। मध्य प्रदेश में वर्ष 2008 के बाद सरकारी गेहूं खरीद में भारी वृद्धि हुई। राज्य द्वारा खरीद बोनस शुरू किए जाने के बाद गेहूं की खरीद 2007 के मात्र 57,000 टन से बढ़कर 2008 में 24 लाख टन हो गई। इससे किसानों ने स्वाभाविक रूप से गेहूं की खेती का रकबा बढ़ा दिया। इससे सिंचित गेहूं क्षेत्र तेजी से बढ़ा, ट्यूबवेलों पर निर्भरता बढ़ी, उथले कुएं सूखने लगे और किसानों को गहरे बोरवेल लगाने पड़े।

हालांकि, जल संकट का अर्थ केवल पानी की कमी नहीं है। हरियाणा के कुछ हिस्सों, विशेषकर रोहतक-झज्जर क्षेत्र में, किसानों को बिल्कुल विपरीत समस्या का सामना करना पड़ रहा है- पानी का खेतों में फंस जाना। रोहतक के भालौत जैसे गांव जलभराव और मिट्टी की लवणता से जूझ रहे हैं। दशकों की नहर सिंचाई, खराब जल निकासी और धान की खेती ने भूजल स्तर को सतह के बेहद करीब ला दिया है। किसान एक भूमिगत परत का उल्लेख करते हैं, जिसे स्थानीय भाषा में "चावा" कहा जाता है। यह केशिका यानी कैपलरी प्रोसेस के खारा पानी ऊपर खींच लाती है।

जहां भारत का बड़ा हिस्सा पानी की कमी से जूझ रहा है, वहीं किसान उपजाऊ भूमि को अनुपजाऊ बनते देख रहे हैं। उनके लिए समाधान अधिक सिंचाई नहीं, बल्कि गहरी जल निकासी प्रणालियां हैं, जो "चावा" को तोड़ सकें और ठहरे हुए खारे पानी को बाहर निकाल सकें। यह एक महत्वपूर्ण सबक देता है कि भारत का जल संकट एक समान नहीं है। यह विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों में अलग-अलग रूप धारण करता है और इसके समाधान भी स्थानीय परिस्थितियों के अनुरूप होने चाहिए।

कमजोर मानसून को देखते हुए केन्द्रीय कृषि मंत्रालय ने राज्यों को जिला आकस्मिक योजनाओं (डिस्ट्रिक्ट कंटिन्जेंसी प्लान) को तैयार करने का निर्देश दिया है। सुझाव दिया गया है कि बारिश कम होती है तो किसान बाजरा, अरहर और ज्वार जैसी सूखा बर्दाश्त कर सकने वाली फसलों की ओर रुख करें। हालांकि, किसान ऐसे उपदेशों से दूर ही रहते हैं। पश्चिमी उत्तर प्रदेश के एक किसान नेता कहते हैं, "कहना आसान है, करना नहीं। इन फसलों के लिए कोई पक्का बाजार ही नहीं है। किसान ऐसी फसल नहीं उगाएंगे जिसे वे बेच ही न सकें।"

कृषि पहले ही कम मुनाफे और अधिक जोखिम वाला व्यवसाय बन चुकी है। वैकल्पिक फसलों के लिए खरीद व्यवस्था और बाजार विकसित किए बिना किसानों से पारंपरिक फसलें छोड़ने को कहना, जोखिम को सरकार से हटाकर सीधे किसान पर डाल देना है।

विशेषज्ञों का तर्क है कि यह लचीलापन (रेजिलिएंस) ऐसी सलाहों से नहीं आने वाला। भारत को जल उपयोग के सरल आकलन से आगे बढ़ना होगा। नीति-निर्माताओं को केवल यह मापने के बजाय कि खेतों में कितना पानी लगाया गया, इस पर ध्यान देना होगा कि फसलें वास्तव में कितना पानी उपभोग करती हैं। ड्रिप सिंचाई जैसी तकनीकें खेत स्तर पर पानी बचा सकती हैं, लेकिन अधिक गहन खेती के मामले में इससे कुल जल दोहन बढ़ भी सकता है। खरीद और सब्सिडी नीतियों को इस प्रकार बनाना होगा कि वे केवल उत्पादन मात्रा के बजाय फसल विविधीकरण और पारिस्थितिक स्थिरता को प्रोत्साहित करें।

सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि नीति-निर्माण किसान-केन्द्रित होना चाहिए। किसान अपने स्थानीय पारिस्थितिक तंत्र को दूर बैठे नौकरशाहों की तुलना में कहीं बेहतर समझते हैं। सूखे, जलभराव, मिट्टी के क्षरण और बाजार की विफलताओं से जुड़े उनके अनुभव भविष्य की जल और कृषि नीतियों को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं।

भारत के सामने चुनौती केवल अधिक खाद्यान्न उत्पादन की नहीं है। असल चुनौती यह है कि पर्यावरण को बरबाद किए बिना खाद्य उत्पादन कैसे बढ़ाया जाए। भारत की भविष्य की खाद्य सुरक्षा केवल आसमान से बरसने वाले मानसून पर निर्भर नहीं करेगी, बल्कि उस पानी पर भी निर्भर करेगी जो अभी उसकी मिट्टी के नीचे बचा हुआ है। सवाल यह है कि क्या नीति-निर्माता उस छिपे हुए भंडार के पूरी तरह समाप्त होने से पहले कदम उठाएंगे? ■

दिल्ली को सहारा देने वाले गांव बेसहारा

दिल्ली पर अपने शहरी गांवों का बहुत बड़ा कर्ज है, लेकिन इसने इन गांवों की कमियों को दूर करने की सिर्फ खानापूर्ति की है

पुनीत सिंह सिंघल

फोटो: गेटी इमेजेज

सैदुलअजब में बिल्डिंग गिरने (बाएं) या हौज रानी में आग लगने की घटना उसी दिन से नहीं शुरू होती। यह तब से शुरू होती है जब से अधिकारी दूसरी तरफ देखने लगते हैं

सैदुलअजब में एक इमारत गिर जाती है। हौज रानी में बेड-एंड-ब्रेकफास्ट होटल में आग लग जाती है। जनस्मृति में, ये दोनों घटनाएं साकेत और मालवीय नगर जैसे बड़े पड़ोसी इलाकों के नामों से जुड़ी रह सकती हैं, लेकिन इसका भूगोल मायने रखता है। ये सामान्य कॉलोनियां नहीं हैं। ये दिल्ली के शहरी गांव हैं, जहां बसावट के पुराने पैटर्न अब एक ऐसे शहर का बोझ उठा रहे हैं जो अपनी खुद की नियोजन कल्पना से बहुत आगे निकल चुका है।

त्रासदी उस दिन शुरू नहीं होती जिस दिन कोई इमारत ढहती है या आग लगती है। इसकी शुरुआत उन लंबे, खामोश सालों में होती है जब अतिरिक्त मंजिलों का निर्माण स्वीकार्य मान लिया जाता है, आवासीय गलियों में व्यावसायिक गतिविधियां प्रवेश कर जाती हैं, बिजली का लोड कई गुना बढ़ जाता है, सीढ़ियां संकरी हो जाती हैं, और हर प्राधिकरण इससे नजरें चुराने का कोई न कोई रास्ता ढूंढ लेता है।

दिल्ली के शहरी गांव एक अजीब इतिहास के बीच बसे हैं। गांवों के पुराने मुख्य हिस्से उनके आसपास की कृषि भूमि से अलग रहे हैं। स्वतंत्रता के बाद जैसे-जैसे दिल्ली का विस्तार हुआ, खेती की जमीन नियोजित अधिग्रहण के दायरे में आती गई, जबकि लाल डोरा क्षेत्र एक अलग कानूनी और प्रशासनिक श्रेणी में बने रहे। उन दशकों में, एक छोटे से भूखंड पर बना एक घर पहले किराये के आवास में बदला, और अंततः 1990 के दशक में एक गेस्ट हाउस, कैफे, क्लिनिक या दुकान में तब्दील हो गया। जो गली पहले निवासियों, मवेशियों और गाड़ियों के लिए इस्तेमाल होती थी, वह अब कारों, डिलीवरी बाइकों, दमकल गाड़ियों और एम्बुलेंसों के लिए एकमात्र सुलभ मार्ग बन गई।

मैं यह आलेख दक्षिण दिल्ली के एक शहरी गांव देवली से लिख रहा हू, जहां यह अंतर्विरोध हर दिन दिखता है। पुराने निवासी अभी भी उस दौर का जिक्र करते हैं जब घरों में आंगन, मवेशियों के लिए जगह, घर के आगे खुले हिस्से और हवा की आवाजाही के लिए पर्याप्त जगह होती थी। अब, अक्सर यह सुनने को मिलता है: 'जमीन तो वही है, पर जरूरत बढ़ गई है'। प्रत्येक अतिरिक्त निर्माण अलग से देखने पर तर्कसंगत लगता है, लेकिन यदि उन्हें दिल्ली जैसे शहर के पैमाने पर देखा जाए, तो वे खतरा पैदा करते हैं।

यही कारण है कि शहरी गांवों को केवल अवैधता के चश्मे से नहीं समझा जा सकता। वे वह सब देते हैं जिसे औपचारिक दिल्ली बार-बार देने में विफल रहती है: छात्रों, प्रवासियों और श्रमिकों के लिए किफायती कमरे; अस्पतालों के पास मरीजों और तीमारदारों के लिए अस्थायी घर; छोटे व्यवसायों के लिए स्थान; सघन खाद्य संस्कृतियां; और ऐसे सामाजिक नेटवर्क जो उन लोगों के लिए जगह बनाते हैं जो नियोजित दिल्ली का खर्च उठाने में असमर्थ हैं। एक युवा श्रमिक बिना हवादार व्यवस्था वाले कमरे को चुनता है क्योंकि वह मेट्रो के करीब और उसके बजट में होता है। एक छात्र तंग पीजी आवास चुनता है क्योंकि यह किफायती होता है और कॉलेज के पास। एक दुकानदार भूतल से व्यवसाय चलाता है क्योंकि किसी मॉल में दुकान की कल्पना भी उसके लिए असंभव है। ये विकल्प हमेशा स्वतंत्र नहीं होते। वे लागत और उपयोगिता से प्रभावित होते हैं, लेकिन यह कोई बहाना नहीं बन सकता।

हौज रानी से सामने आए विवरण विचलित करने वाले हैं क्योंकि वे जाने-पहचाने हैं। कथित तौर पर दो मंजिलों के लिए स्वीकृत की गई एक इमारत, बिना किसी उचित योजना की मंजूरी या अग्नि सुरक्षा प्रमाणपत्र के, कहीं अधिक ऊंची खड़ी हो जाती है। पूरे शहर में यही पैटर्न दोहराया जाता है: अधिक मंजिलें, अधिक किरायेदार, अधिक किराया, अधिक बिजली का लोड, अधिक जोखिम। उचित नियोजन के तहत, ऊंचाई का संबंध सड़क की चौड़ाई, वेंटिलेशन, आपातकालीन निकास और संरचनात्मक सुरक्षा से होता है। कई शहरी गांवों में यह संबंध टूट चुका है।

> गलियों के लोग खतरे को बेहतर समझते हैं। फिर भी, यह समझ कार्रवाई में नहीं उतरती क्योंकि जवाबदेही बिखरी हुई है। मकान मालिक कागजी कार्रवाई को तो किरायेदार क्षमता को दोष देते हैं, अधिकारी उल्लंघनों को तो नेता पिछली सरकारों को दोष देते हैं। वहीं, शहर गांव को दोष देता है

यह दुविधा वास्तविक और कठिन है। बिना किसी विकल्प के अचानक की गई सख्त कार्रवाई उन हजारों लोगों को विस्थापित कर सकती है, जो इन इलाकों पर निर्भर हैं। यह व्यवस्था की कमियों के उजागर होने से पहले किरायेदारों को दंडित कर सकती है। यह सुरक्षा को बेदखली में बदल सकती है। लेकिन असुरक्षित निर्माणों को लगातार बर्दाश्त करने का मतलब इस 'खुले रहस्य' को उजागर करने के लिए अगली आग, इमारत के ढहने या दम घुटने जैसी किसी त्रासदी का इंतजार करना है।

दिल्ली जब तक जरूरत पड़ने पर अपने शहरी गांवों को अवैध, सुविधाओं की मांग करने पर अदृश्य, और केवल आपदाओं के बाद आपराधिक मानना बंद नहीं करेगी, तब तक बात नहीं बनेगी। इन मोहल्लों को मौतों के बाद सामयिक जांच की जरूरत नहीं है। उन्हें दीर्घकालिक, स्थायी और टिकाऊ समाधानों की जरूरत है जैसे कि प्रमाणित इमारतें, स्पष्ट स्वामित्व रिकॉर्ड, व्यावहारिक निर्माण नियम, आपातकालीन पहुंच, अग्नि-जोखिम मानचित्र, संरचनात्मक ऑडिट, रेट्रोफिटिंग सहायता, और ऐसे स्थानीय प्राधिकरण जो त्रासदी होने से पहले जवाबदेह हों।

उद्देश्य शहरी गांवों को समतल करके नियोजित कॉलोनियों में बदलना या उन्हें पुरानी दुनिया की बस्तियों के रूप में रूमानी बनाकर देखना नहीं हो सकता। वे घने, बदलते, असमान, उपयोगी और उपेक्षित शहरी स्थान हैं। किसी भी गंभीर प्रतिक्रिया को उनकी आर्थिक भूमिका और उनकी संवेदनशीलता दोनों को पहचानना होगा।

सैदुलअजब और हौज रानी में हुई मौतें महज दुर्घटनाएं नहीं। ये वे दायित्व हैं जिन्हें दिल्ली एक ऐसी अर्थव्यवस्था के लिए टालती आ रही है जो छूट, शॉर्टकट और संस्थागत उदासीनता पर टिकी है। दिल्ली के शहरी गांवों में, जोखिम को सामान्य मान लिया गया है, उसे किराये पर दिया गया है, उस पर कर लगाया गया है, और उसे बर्दाश्त किया गया है। ■

पुनीत सिंह सिंघल विकलांगता समावेशन और जलवायु न्याय के पैरोकार हैं। वह 'ग्रीन डिसएबिलिटी' और 'दिल्ली देहात प्रोजेक्ट' के संस्थापक/क्यूरेटर हैं

भाजपा सरकारें ऐसे कानून बना रही हैं जिसके तहत अल्पसंख्यक समुदाय के लोगों को झुग्गियों में रहने को मजबूर किया जा सके

नया भारत आख़िर इसमें नया क्या है?

अल्पसंख्यकों को परेशान करने के लिए बनाए कानूनों के आकलन से इसे समझा जा सकता है

आकार पटेल

न्यू इंडिया यानी नया भारत इतनी तेजी से हमारे सामने आया है कि कभी-कभी पीछे मुड़कर यह देखना जरूरी है कि हम कहां पहुंच गए हैं।

पिछले साल 28 अगस्त को, असम भाजपा ने अपनी वेबसाइट (https://assam.bjp.org/en/state-pressreleases/state-bjp-welcomes-new-government-regulations-land-sale-and-purchase-between) पर इस हेडलाइन के तहत एक नोट पब्लिश किया कि: 'प्रदेश भाजपा अलग-अलग धर्मों के बीच जमीन की खरीद-बिक्री पर सरकार के नए नियमों का स्वागत करती है'।

इस नोट में कहा गया है कि 'दो अलग-अलग धर्मों के लोगों के बीच जमीन की खरीद-बिक्री के लिए सबसे पहले सर्कल ऑफिसर के दफ्तर में एप्लीकेशन देनी होगी... सर्कल ऑफिसर इसे डिप्टी कमिश्नर के पास भेजेंगे। इसके बाद डिस्ट्रिक्ट कमिश्नर एप्लीकेशन को राज्य सरकार के रेवेन्यू डिपार्टमेंट को भेजेंगे... जिसके बाद फाइल असम पुलिस की स्पेशल ब्रांच को भेजी जाएगी।' इसके बाद फाइल डिस्ट्रिक्ट कमिश्नर के पास जाएगी, जो मंज़ूरी के बारे में आखिरी फैसला लेंगे।

सवाल है कि लोकतंत्र की जननी माने जाने वाले देश में सरकार ऐसा क्यों कर रही है? इसे समझने के लिए हमें गुजरात जाना होगा, जो ऐसे कानूनों का मुख्य स्रोत है।

सब जानते हैं कि गरीब लोगों का एक साथ मिलकर रहने को मजबूर होना ही 'स्लम' (झुग्गी-बस्ती) कहलाता है। जब किसी खास नस्ल या समुदाय के लोगों को जबरदस्ती कुछ खास इलाकों में रहने के लिए मजबूर किया जाता है, तो उसे 'गेटो' यानी अलग किए गए लोगों की बस्ती कहते हैं। झुग्गी वाले लोगों के पास कहीं और जाने का कोई साधन नहीं होता। गेटो वाले लोगों के पास साधन होने पर भी कोई विकल्प नहीं होता। 'अपार्थाइड' (रंगभेद) का मतलब है अलगाव; यह दक्षिण अफ्रीका की उस नीति को बताता है जिसके तहत अश्वेत अफ्रीकियों को 'गेटो' में रहने के लिए मजबूर किया जाता था। कानून के अनुसार, वे केवल तय जगहों पर ही रह सकते थे।

जब 1960 के दशक में अमेरिका में नस्लीय अलगाव को कानूनी रूप से खत्म किया गया, तो सरकार ने नस्लों को एक साथ लाने के लिए फेयर हाउसिंग एक्ट जैसे कानून बनाए। इस कानून ने संपत्ति की खरीद-फरोख्त में होने वाले उस भेदभाव को रोका, जो अलग-अलग समुदायों को एक-दूसरे से अलग-थलग रखता था।

पूरे गुजरात में, सभी बड़े शहरों और कई कस्बों में सरकार ने इसके ठीक उलट काम किया है। 'डिस्टर्ब्ड एरियाज एक्ट' (अशांत क्षेत्र कानून) के जरिये मुसलमानों को जान-बूझकर खास इलाकों (गेटो) में रहने के लिए मजबूर किया जा रहा है। इस कानून के तहत, शहरों के कुछ खास इलाकों में रहने वाले नागरिकों को अपनी संपत्ति बेचने या किरायेदार बदलने से पहले सरकार से इजाजत लेनी पड़ती है और धर्म के आधार पर उनकी छंटनी की जाती है।

शुरू में यह कानून कुछ समय के लिए और सांप्रदायिक हिंसा के दौरान उन लोगों की सुरक्षा के लिए बनाया गया था, जिन्हें जबरदस्ती घर से निकाले जाने का खतरा था या जिन्हें ऐसा करने के लिए मजबूर किया जा सकता था। लेकिन भाजपा के शासन में गुजरात ने इस कानून का इस्तेमाल मुसलमानों को पारंपरिक मुस्लिम इलाकों के अलावा दूसरे इलाकों से दूर रखने के लिए किया है; इसे बार-बार रिन्यू किया गया, यानी इसमें बदलाव किए गए और इसे पूरे राज्य में लागू किया गया। साथ ही, यह कानून अलग-अलग समुदायों के लोगों को एक साथ रहने की कोशिशों को अपराध मानता है, जिससे मुसलमान हिन्दुओं से हमेशा के लिए अलग हो जाते हैं।

इस कानून के मुताबिक, अगर राज्य सरकार को लगता है कि किसी दंगे की तीव्रता और अवधि ऐसी है कि कोई इलाका 'अशांत' हो गया है, तो वह इस कानून के तहत उस इलाके को एक तय समय के लिए अलग-थलग कर देती है। जब सरकार को यकीन हो जाता है कि इलाका अब 'अशांत' नहीं रहा, तो वह नोटिफिकेशन वापस ले सकती है और प्रॉपर्टी की खरीद-बिक्री पर लगी पाबंदियां हटाई जा सकती हैं। लेकिन असल में हुआ यह है कि कानून लागू होने के पैंतीस साल और 2002 के दंगों के अठारह साल बाद भी, यह कानून उन शहरों में भी लागू है जहां कोई हिंसा नहीं हो रही है। और इसे और इलाकों में लागू करके, मुसलमानों पर और पाबंदियां लगाकर और उनके मोहल्लों से बाहर निकलने में और रुकावटें पैदा करके इसका दायरा बढ़ाया जा रहा है।

> सांप्रदायिक हिंसा के दौरान सुरक्षा देने के मकसद से बनाए गए एक अस्थायी कानून का दायरा अब इस तरह बढ़ा दिया गया है कि मुसलमानों को खास इलाकों से दूर रखा जा सके

2009 में गुजरात की तत्कालीन मोदी सरकार ने इस कानून में बदलाव करके कलेक्टर को अपनी मर्जी से जांच करने और कानून के तहत प्रॉपर्टी का कब्जा लेने का अधिकार दिया। जुलाई 2019 में एक और बदलाव किया गया। पहले, प्रॉपर्टी बेचने वालों को अपनी प्रॉपर्टी ट्रांसफर करने की इजाजत के लिए आवेदन करना पड़ता था और हलफनामे पर अपनी सहमति दर्ज करानी पड़ती थी। अब, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता था कि बिक्री आपसी सहमति से हुई है और मालिक को सही कीमत दी गई है। अगर कलेक्टर को अपनी मर्जी से लगता कि ट्रांसफर होने पर 'जनसांख्यिकीय संतुलन में गड़बड़ी' या 'किसी समुदाय के लोगों का अनुचित जमावड़ा' या 'ध्रुवीकरण की संभावना' हो सकती है, तो वह प्रॉपर्टी की बिक्री रोक सकता था।

इन आधारों पर जांच-पड़ताल के बाद कलेक्टर प्रॉपर्टी के कानूनी ट्रांसफर के लिए किसी एप्लीकेशन को खारिज कर सकते हैं। बिना मंजूरी के प्रॉपर्टी ट्रांसफर करने पर सजा बढ़ाकर छह साल की जेल कर दी गई (जब यह कानून पहली बार लागू हुआ था, तब सजा छह महीने थी)। नए कानून के तहत राज्य सरकार को इलाकों में आबादी के ढांचे पर नजर रखने के लिए एक 'मॉनिटरिंग और एडवाइजरी कमेटी' बनाने की भी इजाजत दी गई। यह कमेटी कलेक्टर को सलाह देती है कि बिक्री की इजाजत दी जाए या नहीं।

बीफ रखने को अपराध मानने वाले कानून सबसे पहले 2015 में महाराष्ट्र और फिर हरियाणा में आए। अलग-अलग धर्मों के लोगों के बीच शादी पर रोक लगाने वाले कानून 2018 में उत्तराखंड से शुरू हुए। 2019 में मुस्लिम तलाक को अपराध मानने वाले कानून आए और साथ ही नागरिकता संशोधन कानून (सीएए) के तहत मुसलमानों को बाहर रखने का कदम भी उठाया गया। यह सिलसिला यहीं नहीं रुकेगा; असम की तरह ही, ऐसे और भी तरीके अपनाए जाएंगे जिनसे यह देश अपने अल्पसंख्यकों को परेशान करेगा और उन्हें निशाना बनाएगा।

हम जिन बदलावों से दो-चार हो रहे हैं, उन्हें बताने के लिए हमारे पास कई शब्द हैं। कुछ लोग इसे 'नया भारत' कहते हैं और कुछ 'गुजरात मॉडल'।

दिलचस्प बात यह है कि इन शब्दों का क्या मतलब है, इसके बारे में कोई जानकारी या परिभाषा मौजूद नहीं है। 'गुजरात मॉडल' का मकसद क्या है और 'न्यू इंडिया' असल में कैसा दिखता है? हमसे यह उम्मीद की जाती है कि हम गहराई से समझें कि इनका क्या मतलब है। सिर्फ सरकार के कामों को देखकर ही हम इसके ढांचे को समझ सकते हैं और यह जान सकते हैं कि असल में यह क्या है।

और उसके बाद हमें खुद से यह सवाल पूछना होगा: क्या हम इन्हीं सब की हिमायत करते हैं और क्या हम चाहते हैं कि दुनिया हमें इसी तरह देखे? ■

जिंदगी के दिन और उन दिनों की जिंदगी

ए.जे. फिलिप ने भारत के प्रधानमंत्री के तौर पर 12 साल पूरे करने वाले नरेन्द्र मोदी के नाम इस पत्र में नेहरू के संभावित विचारों को पिरोया है

प्रिय श्रीमान नरेन्द्र मोदी,

27 मई 1964 को इस पद पर पहुंचने के बाद, मैं आम तौर पर पत्र लिखने से दूर ही रहा हूं। हालांकि, पुरानी आदतें बमुश्किल जाती हैं। मेरी बेटी और मेरे नाती भी यहीं हैं। हममें से कोई भी आपको व्यक्तिगत रूप से नहीं जानता, लेकिन हम अक्सर प्रधानमंत्री के रूप में आपके कार्यकाल की चर्चा करते हैं; क्योंकि आप एक बेहद जिम्मेदारी और जवाबदेही वाले पद पर आसीन रहने वाले प्रधानमंत्रियों की एक लंबी कतार में हमारे ही एक उत्तराधिकारी हैं।

मुझे यह जानकर बेहद खुशी हुई कि आपने 10 जून 2026 को प्रधानमंत्री के रूप में 4,399 दिन पूरे कर लिए हैं। चूंकि आप उत्कृष्ट स्वास्थ्य में और ऊर्जा से भरपूर दिखाई देते हैं, आप रूस के अपने मित्र व्लादिमीर पुतिन के रिकॉर्ड को पार करने की आकांक्षा भी रख सकते हैं, जिन्होंने 9 अगस्त 1999 से या तो राष्ट्रपति या प्रधानमंत्री के रूप में कार्य किया है। कृपया इस उपलब्धि पर मेरी हार्दिक बधाई स्वीकार करें।

हालांकि, मैं अक्सर सोचता हूं कि क्या आपके और मेरे बीच की तुलना पूरी तरह उचित है। जब 1964 में मेरा निधन हुआ, तब भारत में जीवन प्रत्याशा लगभग 42 वर्ष थी। फिर भी मैं 74 वर्ष तक जीवित रहा। आज, भारत में जीवन प्रत्याशा 72 वर्ष के करीब है। उस मानक के अनुसार, आप आसानी से 100 की उम्र पार कर सकते हैं और हर तुलना में मुझे बहुत पीछे छोड़ सकते हैं।

मैं स्वीकार करता हूं कि मेरे मन में आपके लिए एक निश्चित प्रशंसा है। जैसा कि आपने अक्सर टिप्पणी की है, मैं मुंह में चांदी का चम्मच लेकर पैदा हुआ था। मैं यह कहानियां सुनते हुए बड़ा हुआ कि मेरे गंदे कपड़े धुलने के लिए पेरिस जाते थे।

मेरे पिता ने अच्छी-खासी संपत्ति अर्जित की और अगर वह चाहते तो और अधिक संचय कर सकते थे। इसके बजाय, उन्होंने स्वतंत्रता संग्राम में शामिल होने के लिए आराम का त्याग कर दिया। उन्हें दो बार गिरफ्तार किया गया, दूसरी बार अवज्ञा आंदोलन के दौरान मेरे साथ। उन्होंने जेल में कुल सात महीने बिताए और बिगड़ते स्वास्थ्य के कारण हर बार उन्हें समय से पहले रिहा कर दिया गया। जेल से अपनी अंतिम रिहाई के कुछ ही समय बाद उनका निधन हो गया।

मैं भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्ष के रूप में उनका उत्तराधिकारी बना। उन वर्षों में मेरी सबसे बड़ी ताकत महात्मा गांधी का समर्थन थी। मैं बेहिचक कह सकता हूं कि मैं उन्हें उनके अपने बेटों से भी अधिक प्रिय था। यह गांधी का ही समर्थन था जिसने मुझे 1946 में कार्यकारी परिषद का उपाध्यक्ष बनने में मदद की, वह निकाय जिसकी अध्यक्षता वायसराय करते थे।

उससे पहले, मैंने लगभग नौ साल जेल में बिताए थे। चूंकि आपका जन्म स्वतंत्रता के बाद हुआ था, इसलिए स्वतंत्रता संग्राम में आपके जेल जाने का कोई अवसर नहीं था। हालांकि, यह मेरे लिए रहस्य है कि आप उस आपातकाल के दौरान गिरफ्तारी से कैसे बच गए जिसे मेरी विचारहीन बेटी ने देश पर थोप दिया था। कारण जो भी हो, मैं इसे आपके खिलाफ नहीं मानूंगा।

मैं आपके मन में बैठे इस यकीन को दूर करना चाहूंगा कि 1947 की प्रधानी 2014 की प्रधानी जैसी ही थी।

अंग्रेजों द्वारा स्थापित रेलवे लाइनों, डाक और तार प्रणालियों तथा छावनियों को छोड़कर, ऐसा कुछ भी नहीं था जिसे राष्ट्रीय बुनियादी ढांचा कहा जा सके। भूख से होने वाली मौतें असामान्य नहीं थीं। नाम मात्र का भी कोई निजी क्षेत्र नहीं था।

> मैंने 'मेड इन इंडिया' वाक्यांश नहीं गढ़ा था, लेकिन हमने भारत को चीजें बनाने में सक्षम बनाने का प्रयास किया। मुझे खुशी है कि आपने मेरे शब्दों को उधार लिया और कहा कि आप 'प्रधान सेवक' हैं

विभाजन ने हमें असंभव कार्यों के साथ छोड़ दिया था। पंजाब ने लाहौर खो दिया था। हमें नई राजधानी की जरूरत थी, जो सीमा से यथासंभव दूर हो। इस तरह चंडीगढ़ का उदय हुआ, जो तब एक आम के बाग से अधिक कुछ नहीं था। मुझे स्विस-फ्रांसीसी वास्तुकार ली कोरबुसियर को व्यक्तिगत रूप से पत्र लिखकर इसे बनाने का अनुरोध करना पड़ा था। मैंने उन्हें स्पष्ट रूप से बताया था कि भारत उनकी फीस देने के लिहाज से बहुत गरीब है। हम उन्हें एक घर, एक कार और स्टाफ दे सकते थे, लेकिन इससे ज्यादा कुछ नहीं। वह राजी हो गए।

मैंने 'मेड इन इंडिया' वाक्यांश नहीं गढ़ा था, लेकिन हमने भारत को चीजें बनाने में सक्षम बनाने का प्रयास किया। मुझे खुशी हुई कि आपने मेरे शब्दों को उधार लिया और कहा कि आप 'प्रधान सेवक' हैं।

हमारा पहला दायित्व राष्ट्र-निर्माण था। संविधान के तहत लोकतांत्रिक संस्थाओं की कल्पना करनी थी, उन्हें बनाना था और उन्हें संवारना था। पहले आम चुनाव कराने के लिए एक स्वतंत्र चुनाव आयोग का गठन किया गया था। इस विशाल उद्यम का नेतृत्व करने के लिए तत्कालीन पश्चिम बंगाल के मुख्य सचिव सुकुमार सेन को चुना गया था।

वहां 17.6 करोड़ पात्र मतदाता थे, जिनमें से लगभग 85 फीसद न तो पढ़ सकते थे और न लिख सकते थे। प्रत्येक मतदाता की पहचान होनी थी, उनका पंजीकरण किया जाना था। मतपेटियों का निर्माण होना था। मतदान केंद्र बनाने थे। चुनाव चिन्ह तैयार करने थे।

मैं एक अन्य मामले में आपसे अधिक भाग्यशाली था। स्वतंत्रता आंदोलन में मेरी भूमिका के कारण, चुनाव जीतना आसान था। मैं शायद ही कभी मंदिरों, मस्जिदों या चर्चों में जाता था, और फिर भी लोगों ने मुझ पर इतना भरोसा किया कि मुझे वोट दिया। 1952 में, कांग्रेस ने 44.99 फीसद मतों के साथ 489 में से 364 सीटें जीतीं। 1957 में, इसने 47.78 फीसद के साथ 494 में से 371 सीटें हासिल कीं। 1962 में, मेरे अंतिम चुनाव में, पार्टी ने 44.77 फीसद मतों के साथ 494 में से 361 सीटें जीतीं। आपकी पार्टी ने जो सीटें जीतीं या जो प्रतिशत हासिल किया, उसका उल्लेख करना मेरी ओर से अनुदारता होगी।

मैंने भारत के उन आधुनिक मंदिरों का निर्माण करना पसंद किया जिन्हें मैंने कभी भाखड़ा-नंगल बांध और हीराकुंड बांध कहा था। वे विज्ञान और सामूहिक प्रयास के माध्यम से भूख, बाढ़ और सूखे पर विजय पाने के लिए दृढ़ संकल्पित लोगों के प्रतीक थे।

मुझे यह जानकर अच्छा लगा कि आप जापान के पूर्व प्रधानमंत्री शिंजो आबे को भव्य गंगा आरती दिखाने वाराणसी ले गए थे। मुझे याद है कि मैं भी चीनी प्रधानमंत्री चाउ एन-लाई को भाखड़ा-नांगल बांध दिखाने पंजाब ले गया था। शायद दोनों ही हाव-भाव हमारे संबंधित समय के मिजाज को दर्शाते हैं। मेरा मानना है कि इतिहास में दोनों ही दृश्यों के लिए जगह है।

तकनीक ने आपको 'मन की बात' करने और अपनी आवाज को भारत के कोने-कोने तक पहुंचाने की सहूलियत दी है। मुझे पत्रों पर निर्भर रहना पड़ता था। जेल ने मुझे फुरसत दी होगी, लेकिन मैंने इसका उपयोग लिखने के लिए करना चुना। अपनी कैद के दौरान, मैंने किताबें लिखीं क्योंकि लिखना मेरे देशवासियों के साथ बातचीत करने का मेरा तरीका था।

प्रधानमंत्री के रूप में भी, मैं नियमित रूप से मुख्यमंत्रियों को पत्र लिखता था क्योंकि मेरा मानना था कि एक संघीय लोकतंत्र में बातचीत, अनुनय और स्पष्टीकरण की आवश्यकता होती है।

मुझे अनुमति दें कि मैं उन पत्रों में से सबसे पहले पत्र में 15 अक्तूबर 1947 को जो लिखा था, उसे यहां उद्धृत करूं: 'हमारे पास मुस्लिम अल्पसंख्यक है जो संख्या में इतने बड़े हैं कि वे, यदि चाहें भी, तो कहीं और नहीं जा सकते। उन्हें भारत में ही रहना है। यह एक बुनियादी तथ्य है जिसके बारे में कोई तर्क नहीं हो सकता... हमें उन्हें एक लोकतांत्रिक राज्य में सुरक्षा और नागरिकों के अधिकार देने होंगे।' लगभग आठ दशक बाद भी, मैं उन शब्दों को प्रासंगिक मानता हूं।

मैं समझता हूं कि आप मुख्यमंत्रियों को पत्र नहीं लिखते। आपके पास एक्स और अन्य सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म हैं जिनके माध्यम से आप सीधे लोगों से संवाद कर सकते हैं। मुझे यह भी सूचित किया गया है कि आपकी पुस्तक, 'एग्जाम वॉरियर्स', युवा पाठकों के बीच काफी सफल रही है। मैं प्रधानमंत्री के पद पर रहते हुए किताबें नहीं लिख सका।

आपके विपरीत, मेरे द्वारा दिए गए प्रत्येक सार्वजनिक भाषण के लिए तैयारी की आवश्यकता होती थी। मुझे विषय का अध्ययन करना पड़ता था, नोट्स बनाने होते थे, ड्राफ्ट को संशोधित करना पड़ता था और तब जाकर संबोधन देना होता था। आपके पास टेलीप्रॉम्प्टर का लाभ है। मेरे दौर में यात्रा करना अपने आप में एक कठिन परीक्षा थी। कई गंतव्यों के लिए सीधी उड़ान नहीं थी। अमेरिका की यात्राओं में कई जगह रुकना पड़ता था, अपरिचित हवाई अड्डों पर लंबा इंतजार करना होता था और अंतहीन थकान झेलनी पड़ती थी।

आज, आपके पास ऐसे आधुनिक विमान हैं जो आपको कुछ ही घंटों में महाद्वीपों के पार ले जाने में सक्षम हैं। मुझे बताया गया है कि अब कोई भी नई दिल्ली से न्यूयॉर्क की दूरी महज चौदह घंटे में पूरी कर सकता है।

मैं प्रेस कॉन्फ्रेंस से बचने के लिए आपको दोष नहीं देता। आपके पास सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म हैं जिनके माध्यम से आप बिना किसी व्यवधान या असुविधाजनक प्रश्नों के दुनिया से संवाद कर सकते हैं। दूसरी ओर, मुझे पत्रकारों से मिलना पड़ता था, सवालों के जवाब देने होते थे और खुद को प्रेस कॉन्फ्रेंस के सामने उसकी पूरी अनिश्चितता के साथ पेश करना पड़ता था।

मुझ पर अक्सर की जाने वाली एक आलोचना यह है कि मैंने आईआईटी और एम्स जैसी संस्थाओं की स्थापना करते समय प्राथमिक शिक्षा पर अपर्याप्त ध्यान दिया। उस आलोचना में कुछ सच्चाई है।

मैंने स्कूली शिक्षा को काफी हद तक राज्यों पर छोड़ने की गलती की। मैंने साधारण पृष्ठभूमि के मेधावी छात्रों के लिए छात्रवृत्ति योजनाओं को बढ़ावा दिया। आपने एक अलग रास्ता चुना है, देश भर के बच्चों को हर साल सरकारी खर्च पर अपने साथ बातचीत के लिए आमंत्रित करते हैं।

मैं स्वीकार करता हूं कि मेरी भाषा कम कल्पनाशील थी। मैंने विकास में पिछड़े जिलों को 'पिछड़े जिले' के रूप में वर्णित किया। आप उन्हें 'आकांक्षी जिले' कहते हैं। यह एक अधिक विनम्र वाक्यांश है और शायद अधिक बुद्धिमानी भरा भी। उम्मीद अक्सर सहानुभूति की तुलना में बेहतर प्रेरित करती है।

आपके विपरीत, मुझे अत्यधिक बुद्धिजीवी और स्वतंत्र स्वभाव के सहयोगियों के साथ व्यवहार करना पड़ता था। डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी मुझसे असहमत हुए और इस्तीफा दे दिया। डॉ. बी.आर. आम्बेडकर ने मेरी कैबिनेट छोड़ दी। मतभेदों के बाद सी.डी. देशमुख चले गए। जॉन मथाई अलग हो गए। लाल बहादुर शास्त्री बेखौफ कभी-कभी मुझसे असहमत हो जाते थे। उन्होंने एक ट्रेन दुर्घटना की जिम्मेदारी लेते हुए इस्तीफा दे दिया था। मुझे खुशी है कि आपका कोई भी मंत्री सार्वजनिक रूप से आपकी आलोचना करता नहीं दिखता।

मैं आध्यात्मिकता के बारे में बहुत कुछ नहीं जानता। मैं एक अज्ञेयवादी था और धार्मिक अनुष्ठानों के पालन के प्रति संशय में रहता था। आप अक्सर मंदिरों में जाते हैं, प्रसाद ग्रहण करते हैं और भक्ति के साथ धार्मिक समारोहों में भाग लेते हैं। क्या यह आपकी असाधारण ऊर्जा और आपके सतहत्तरवें वर्ष के करीब पहुंचने पर भी युवा दिखने का रहस्य है?

मैं जानता हूं कि यह एक मिथक है कि चीन की महान दीवार चंद्रमा से दिखाई देती है। ऐसा संभव होने के लिए मानव दृष्टि को कई हजार गुना अधिक मजबूत होना पड़ेगा। मैं सरदार पटेल के सम्मान में आपके द्वारा बनाई गई 'स्टैच्यू ऑफ यूनिटी' के बारे में निश्चितता के साथ ऐसा नहीं कह सकता। मुझे बार-बार बताया जाता है कि पटेल और मैं विरोधी थे। सच्चाई कहीं अधिक जटिल है।

वह मुझसे बड़े थे। उनका स्वभाव अलग था, प्रवृत्तियां अलग थीं। हमने बहस की, असहमति जताई और कभी-कभी एक-दूसरे को उत्तेजित भी किया। फिर भी इनमें से किसी भी बात ने हमें एक नए स्वतंत्र राष्ट्र की सेवा में मिलकर काम करने से नहीं रोका।

वे 71 वर्ष की आयु में गृह मंत्री बने और 1950 में उनका निधन हो गया। उनका जाना मेरे लिए व्यक्तिगत रूप से और देश के लिए राजनीतिक रूप से गंभीर क्षति थी। हममें विचारों के मतभेद थे, लेकिन हमारे बीच सम्मान भी था। आज के सार्वजनिक जीवन को शायद यह याद रखने से लाभ हो कि असहमति से स्नेह और प्रतिद्वंद्विता से शालीनता खत्म नहीं होनी चाहिए।

अब जब मैं इस पत्र को समाप्त कर रहा हूं, मुझे एक बार फिर आपके उल्लेखनीय कार्यकाल पर बधाई देने की अनुमति दें।

प्रत्येक प्रधानमंत्री को पूर्ववर्तियों द्वारा आकार दिया गया भारत विरासत में मिलता है और वह अपने स्वयं के विकल्पों द्वारा परिवर्तित एक भारत पीछे छोड़ जाता है। आपको 1947 में मुझे सौंपे गए देश की तुलना में असीम रूप से अधिक मजबूत, समृद्ध और अधिक आत्मविश्वासी देश विरासत में मिला। अपनी मान्यताओं के अनुसार भारत की सेवा करना जारी रखें, लेकिन याद रखें कि संस्थाएं व्यक्तियों की तुलना में अधिक स्थायी होती हैं, असहमति देशद्रोह नहीं है, बहुमत स्थायी नहीं, और सत्ता की सच्ची परीक्षा इस बात में है कि वह उन लोगों के साथ कैसा व्यवहार करती है जो उससे असहमत हैं।

एक ऐसे स्थान से सस्नेह आदर सहित, जहां चुनाव के नतीजों का कोई मोल नहीं और जहां इतिहास की कसौटी पर हर साख की समीक्षा निरंतर की जाती है।

आपका भवदीय,
जवाहरलाल नेहरू

यह सामग्री पहली बार 'इंडियन करंट्स' में 15 जून को प्रकाशित हुई

> मैं शायद ही कभी मंदिरों, मस्जिदों या चर्चों में जाता था, और फिर भी लोगों ने मुझे वोट दिया। मैंने भारत के उन आधुनिक मंदिरों का निर्माण करना पसंद किया जिन्हें मैंने कभी भाखड़ा-नांगल बांध और हीराकुंड बांध कहा था

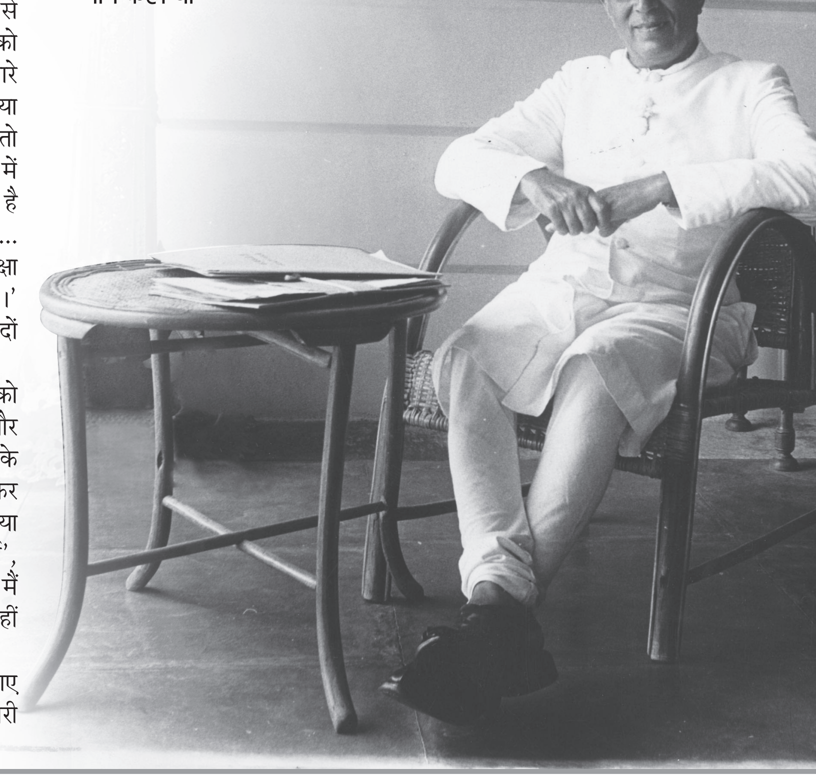

संवैधानिक नैतिकता के तिरस्कार की हद

बड़ा सवाल कि धर्मेंद्र प्रधान इस्तीफा क्यों नहीं दे रहे या प्रधानमंत्री उन्हें बर्खास्त क्यों नहीं कर रहे

कृष्ण प्रताप सिंह

अनेक देशवासी (जिनमें बहुत से अपने भविष्य के लिए संघर्षरत छात्र और उनके अभिभावक हैं) समझ नहीं पा रहे कि नीट-यूजी, सीबीएसई और सीयूईटी जैसी महत्वपूर्ण परीक्षाओं में बार-बार पेपर लीक, आनस्क्रीन मार्किंग (ओएसएम) और मूल्यांकन प्रणाली में अन्यायकारी गड़बड़ियों, अनियमितताओं एवं भ्रष्टाचार तथा नेशनल टेस्टिंग एजेंसी (एनटीए) की विडंबनाओं से भरी कार्यप्रणाली पर अनेक सवाल उठने के बावजूद इन सबके लिए उत्तरदायी केन्द्रीय शिक्षामंत्री धर्मेंद्र प्रधान पद से इस्तीफा क्यों नहीं दे रहे? वह नहीं दे रहे तो प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी खुद ही उनसे इस्तीफा क्यों नहीं मांग ले रहे या राष्ट्रपति से उनकी बर्खास्तगी की सिफारिश क्यों नहीं कर दे रहे?

इसका का उत्तर आसान होता, अगर यह भारतीय राजनीति की सत्ता लोलुपता की सामान्य प्रवृत्ति से जुड़ा होता। दुर्भाग्य से इसके उत्तर की जड़ें इस तथ्य से होकर भी गुजरती हैं कि न प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी, न उनके (राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ) परिवार, न सरकार या मंत्रियों को देश की संवैधानिक नैतिकता का तनिक भी अभ्यास है और न ही उसके प्रति किंचित भी सम्मान बचा है।

याद कीजिए, मोदी की पहली सरकार के महज एक साल बाद 24 जून 2015 को तत्कालीन गृहमंत्री राजनाथ सिंह ने यह कहकर कि 'इस सरकार में मंत्रियों के त्यागपत्र नहीं होते भैया, यह यूपीए की नहीं, एनडीए की सरकार है', 'घोषणा' कर दी थी कि वह सरकार स्वयं को सारी संवैधानिक नैतिकताओं से परे कर लेने के फेर में है। प्रधान का प्रकरण सिर्फ यह बताता है कि इस सरकार ने अपने तीसरे कार्यकाल में 'परे कर लेने' के इस लक्ष्य को सफलतापूर्वक प्राप्त कर लिया है।

4 नवंबर 1948 को संविधान सभा में संविधान का मसौदा पेश करते हुए बाबासाहब डॉ. भीमराव आम्बेडकर ने जो महत्वपूर्ण बातें कही थीं, उनके आईने में इसे समझना कठिन नहीं है कि प्रधान सारी नैतिकताओं को नकार कर इस तरह अपनी कुर्सी से क्यों चिपके हुए हैं। बाबासाहब ने कहा था कि संवैधानिक नैतिकता स्वाभाविक या जन्मजात नहीं होती और उसे अभ्यास द्वारा पाना और अपनाना पड़ता है। 25 नवंबर 1949 को संविधान सभा में अपने अंतिम भाषण में उन्होंने चेतावनी दी थी कि सत्ता में बैठे लोग चाहें तो संविधान के लिखित शब्दों (यानी स्वरूप) को बिना बदले, केवल प्रशासन चलाने के तरीके बदल करके संविधान की मूल भावना को नष्ट कर सकते हैं। इसी सिलसिले में उन्होंने यह भी कहा था कि संविधान अच्छे हाथों में रहा तो अच्छा फल देगा और बुरे हाथों में पड़ गया तो बुरा।

मोदी के प्रधानमंत्रित्व के बारह साल बाबा साहब की इसी 'बुरे हाथों' वाली बात को सही सिद्ध करते रहे हैं। करें भी क्यों नहीं, न उनके पितृ संगठन में इस संविधान के स्वीकार और सम्मान की कोई ईमानदार परंपरा रही है, न पार्टी में।

हमारे लोकतांत्रिक इतिहास में नैतिकता के पालन के एक नहीं, अनेक उदाहरण हैं। नवंबर 1956 में तमिलनाडु के अरियालूर में भीषण ट्रेन हादसे में एक सौ चालीस से ज्यादा लोगों की जानें चली जाने के बाद तत्कालीन रेल मंत्री लालबहादुर शास्त्री ने अपना इस्तीफा सौंप दिया था। उनसे पहले वी.के. कृष्ण मेनन ने युद्ध में चीन के हाथों देश की पराजय के बाद 31 अक्तूबर 1962 को रक्षामंत्री के पद से त्यागपत्र दे दिया था।

ऐसे में न सिर्फ विपक्षी दलों बल्कि पीड़ित छात्रों व अभिभावकों द्वारा भी बार-बार धर्मेन्द्र प्रधान का इस्तीफा मांगे जाने पर प्रधान के बचाव में उतर रहे सारे स्वनामधन्यों से यह जरूर पूछना चाहिए कि यदि वे मानते हैं कि कोई मंत्री अपने विभाग में हुई गड़बड़ियों के लिए जिम्मेदार नहीं होता, तो भाजपा के पूर्व अवतार भारतीय जनसंघ और उसके पितृ संगठन राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ने 1962 में जोर-शोर से रक्षामंत्री कृष्ण मेनन का इस्तीफा क्यों मांगा था? क्यों 1996 में भाजपा ने तत्कालीन संचार मंत्री सुखराम के इस्तीफे की मांग को लेकर संसद को ठप करके उसे हफ्तों तक नहीं चलने दिया था?

संविधान के जानकार और वरिष्ठ राजनीतिविज्ञानी डॉ. रामबहादुर वर्मा कहते हैं कि संविधान निर्माता सोच भी नहीं सकते थे कि एक दिन ऐसे लोग या दल देश की सत्ता में आ जाएंगे जो ऊपर से तो संविधान का खोल ओढ़े हुए होंगे, भीतर से उस पर एक के बाद एक प्रहार करते हुए लगातार उसे क्षतिग्रस्त करने में लगे रहेंगे।

डॉ. वर्मा बताते हैं कि हमारे जैसे देश में सरकार और उसके मंत्रियों के दायित्व निर्वहन की लगातार छानबीन को आवश्यक मानकर ही संविधान निर्माताओं ने राष्ट्रपति शासन प्रणाली के बजाय संसदीय शासन प्रणाली को स्वीकार किया था, जिसमें दायित्व को स्थायित्व से अधिक महत्वपूर्ण समझा जाता है। इसमें प्रधानमंत्री और मंत्री संसद के सदस्य तो होते ही हैं, उसके प्रति उत्तरदायी भी होते हैं।

> नरेन्द्र मोदी की सरकार, उनकी पार्टी भाजपा और संघ परिवार समझते हैं कि नैतिकता का पालन करते रहकर वे संविधान के उद्देश्यों और भावनाओं के विरुद्ध जाकर अपने स्वार्थ पूरे नहीं कर सकते

उनका अपने पद पर रहना और जाना भी संसद के विवेक पर ही निर्भर है और वह किसी भी समय अविश्वास प्रस्ताव द्वारा उन्हें तो क्या, उनकी समूची सरकार को ही पद से हटा सकती है। अविश्वास प्रस्ताव के अलावा भी प्रश्न और पूरक प्रश्न, काम रोको प्रस्ताव, अल्पकालीन प्रस्ताव और आधे घंटे की बहस आदि तमाम ऐसे तरीके हैं जिनके द्वारा संसद मंत्रिमंडल पर अपना नियंत्रण रखती है तथा उसे उसके कार्यों के लिए जवाबदेह ठहराती है।

इस जवाबदेही में नैतिक जवाबदेही भी अनिवार्य रूप से शामिल है और उससे कतई इनकार नहीं किया जा सकता। इसमें लोकलाज को भी शामिल कर लें तो निर्लज्ज होकर लोकमत के विरुद्ध किसी सरकार या मंत्री का उनकी छाती पर सवार रहना भी नैतिक जवाबदेही की घोर अवज्ञा है, जिसको हर हाल में निंदनीय ही माना जाता है, कभी भी काबिल-ए-तारीफ नहीं।

निस्संदेह, मंत्रिमंडल का सामूहिक उत्तरदायित्व संसदीय शासन प्रणाली का एक प्रमुख सिद्धान्त है। लेकिन वह सरकार के मंत्रियों को समूची सरकार के पतन तक अपने पद पर बने रहने का संरक्षण नहीं देता। उसका अर्थ सिर्फ यह है कि सारे मंत्री प्रधानमंत्री के नेतृत्व में एकजुट होकर कार्य और संसद का सामना करें। साथ ही वे सभी सरकार की समूची नीति के लिए जिम्मेदार हों।

लेकिन सामूहिक उत्तरदायित्व की आड़ में मंत्री के प्रभाराधीन विभाग/मंत्रालय के कामकाज के समुचित संपादन से जुड़े मंत्री के व्यक्तिगत उत्तरदायित्व को नकारा नहीं जा सकता। अपने विभाग/ मंत्रालय के कार्यों के लिए संसद के प्रति मंत्री का उत्तरदायित्व भी संसदीय प्रणाली का अपरिहार्य अंग है। साथ ही, किसी मंत्री की संवैधानिक नैतिकता का अर्थ संविधान के लिखित कानूनों का पालन करना भर ही नहीं, बल्कि संविधान की अंतर्निहित भावना (जैसे न्याय, स्वतंत्रता, समानता, बंधुत्व और जन कल्याण) के प्रति अटूट निष्ठा बनाए रखना भी है। संवैधानिक ढांचे में एक मंत्री के लिए इसका मुख्य आधार संसद, साथ ही जनता, के प्रति अपनी जवाबदेही सुनिश्चित करना ही है। इसके बगैर जिसे हम कानून का शासन कहते हैं, वह संभव ही नहीं है, न ही संविधान की सर्वोपरिता ही संभव है।

ऐसा नहीं है कि नरेन्द्र मोदी की सरकार, पार्टी और संघ परिवार इस बात को समझते नहीं हैं। खूब समझते हैं, लेकिन इससे ज्यादा वे इस बात को समझते हैं कि इस नैतिकता का पालन करते रहकर वे संविधान के उद्देश्यों और भावनाओं के विरुद्ध जाकर अपने स्वार्थ पूरे नहीं कर सकते। इसलिए जब भी वे अपनी इस तरह की स्वार्थ साधना में रत होते हैं, भूल जाते हैं कि संवैधानिक नैतिकता विधि द्वारा स्थापित देश के संविधान की आत्मा और मूल्यों से जुड़ी हुई है। ■

फोटो: गेटी इमेजेज

पेपर लीक मामले पर केन्द्रीय शिक्षा मंत्री धर्मेंद्र प्रधान के इस्तीफे की मांग करते एनएसयूआई के कार्यकर्ता

संडे नवजीवन
रविवार, 21 जून, 2026 I www.navjivanindia.com
Published Date 21 June, 2026 (Sunday), Posted at LPC Delhi RMS, Delhi-06, Posting Days Friday and Saturday

इन आदिवासियों का जंगल किसने छीना?

कभी कैमूर वन्यजीव अभयारण्य आदिवासियों की आजीविका का आधार था, लेकिन जिस तरह जंगल पर उनका हक़ सिमटता गया, निराशा और आक्रोश बढ़ रहा है

उमेश कुमार राय

श्रीनाथ सिंह खरवार वे दिन याद करते हैं, जब साथियों संग तेंदू (डायोस्पायरोस मेलानोक्सिलोन) के पत्ते तोड़ने अधौरा के घने जंगलों में जाते थे। जंगल की खामोशी जल्द ही उनके साथी आदिवासियों की बातचीत और गीतों से भर जाती। श्रीनाथ कहते हैं, "हम घर से खाना-पानी लेकर जाते। आपस में बातें करते, गाते-बतियाते, तो पूरा जंगल जीवंत हो उठता।"

श्रीनाथ (47) लगभग ढाई दशक पुरानी यादें ताजा कर रहे हैं। हम दोनों अधौरा की पहाड़ियों की ओर जाने वाली बस में साथ बैठे हैं, जो बिहार के दक्षिणी छोर पर कैमूर जिले के मुख्यालय भभुआ से सुबह-सुबह रवाना हुई है। अधिकांश सहयात्री रोजगार के लिए बाहर गए आदिवासी हैं, जो गांव लौट रहे हैं। श्रीनाथ भी अपने गांव चनपुरा जा रहे हैं। झारखंड के पतरातू स्थित एक सीमेंट फैक्टरी में काम करते हैं।

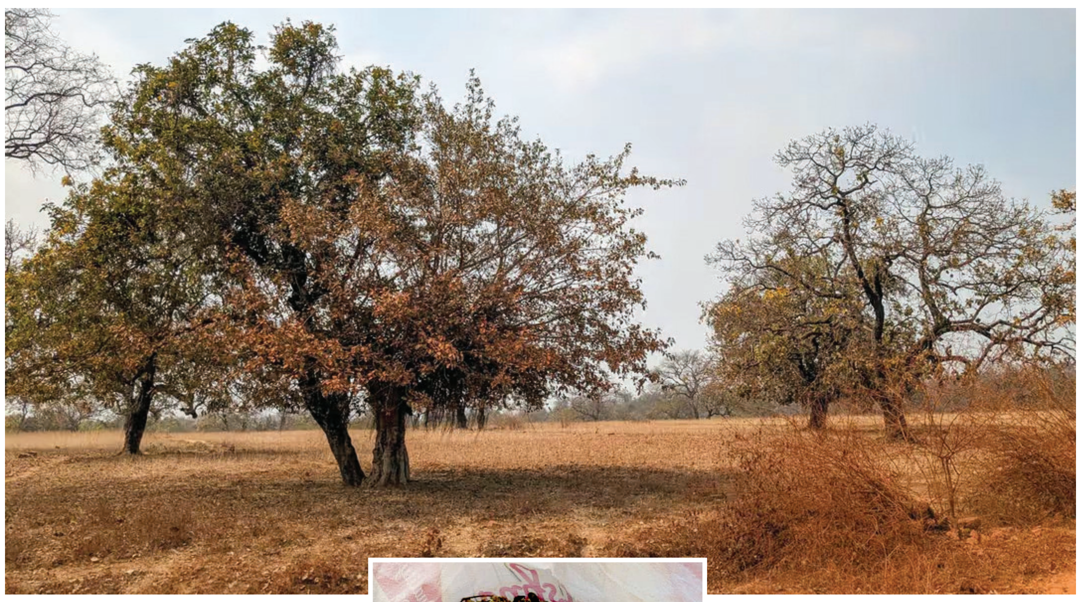

*

श्रीनाथ हमेशा से प्रवासी मजदूर नहीं थे। वह और उनका परिवार, वास्तव में तो अधौरा के लगभग सभी आदिवासी तेंदू पत्ता इकट्ठा करने और अन्य छोटे-मोटे वन उपज पर निर्भर रहते थे। श्रीनाथ बताते हैं, "हममें से हर कोई कम से कम 300 रुपये रोज कमा लेता था। मेरे माता-पिता, मेरा भाई और मैं- सब मिल एक महीने तक पत्ते तोड़ते हुए अच्छी कमाई कर लेते थे।"

सन् 2000 में कैमूर वन्यजीव अभयारण्य घोषित होने के बाद सबकुछ बदल गया। तेंदू पत्ता तोड़ने के अधिकांश ठेके लेने वाला एक व्यापारी बताता है, "तेंदू के 80 प्रतिशत से अधिक पेड़ अभयारण्य क्षेत्र में चले गए," और इस तरह पेड़ और पत्ते उनकी पहुंच से दूर हो गए।

साल 2000 के बाद राज्य के वन विभाग ने वन उपज इकट्ठा करने और बेचने पर सख्त नियंत्रण लगा दिया। श्रीनाथ कहते हैं, "अभयारण्य बनने के साथ ही तेंदू पत्ते तोड़ने का काम खत्म हो गया।" जून में ठेकेदारों द्वारा तेंदू पत्ते तोड़ने को रखे जाने वाले अधौरा के आदिवासी अचानक बेरोजगार हो गए।

वन अधिकार अधिनियम, 2006 (एफआरए) की धारा 3(1)(सी) अनुसूचित जनजातियों को लघु वन उपज पर स्वामित्व तथा उसके संग्रहण, उपयोग और बिक्री का अधिकार देती है, जिन्हें पारंपरिक रूप से गांव की सीमा के भीतर या बाहर से इकट्ठा किया जाता है। यह अधिनियम ग्राम सभा को जंगल और आसपास रहने वाली अनुसूचित जनजातियों के अधिकार निर्धारित करने का अधिकार भी देता है। लेकिन लगता है कि अधौरा में एफआरए अस्तित्व में ही नहीं है, जिससे जंगल पर निर्भर हजारों लोगों की आजीविका बुरी तरह प्रभावित हुई है।

बहेरा गांव के सुकऊ सिंह खरवार कहते हैं, "साल के छह से सात महीने हमारी आजीविका वन उपज पर निर्भर रहती थी। हम महुआ, पियार, हर्रे और बहेरा जैसी चीजें इकट्ठा करके बेचते। इसी आय से इलाज करवाते, खाना पकाने के लिए तेल, मसाले और कपड़े खरीदते थे।" सुकऊ (50) कहते हैं, "यहां कोई फैक्ट्री भी तो नहीं है जहां हम काम करने जा सकें।"

परेशानी यह है कि अभयारण्य घोषित होने से पहले तेंदू पत्ते तोड़कर ठीक-ठाक कमाई हो जाती थी, लेकिन प्रतिबंध के नाम पर यह काम बंद है

बिहार जाति सर्वेक्षण 2022-23 के अनुसार, बिहार में 33 जनजातीय समुदायों की कुल आबादी लगभग 21 लाख है। अविभाजित बिहार में आदिवासियों की संख्या काफी अधिक थी, जिससे उनकी आवाज को पर्याप्त महत्व मिलता था। लेकिन 2000 में झारखंड अलग होने के बाद राज्य में उनकी संख्या काफी कम हो गई और यह भी सही है कि आबादी कम होने के कारण वे राज्य सरकार की प्राथमिकता में नहीं रहे।

झारखंड में, जहां उनकी संख्या ज्यादा है, राज्य सरकार झारखंड राज्य वन विकास निगम लिमिटेड के जरिये आदिवासियों से लघु वन उत्पाद खरीदती है।

इसके अलावा, झारखंड सरकार ने 2023 में सिदो-कान्हु कृषि एवं वन उत्पाद संघ की स्थापना की, जिसका उद्देश्य वनोपज की ब्रांडिंग और विपणन है। वहां आदिवासियों को वन उपज का न्यूनतम समर्थन मूल्य (एमएसपी) भी मिलता है, जबकि बिहार में ऐसी कोई व्यवस्था नहीं है। बिहार में सिर्फ दो विधानसभा सीटें आदिवासियों के लिए आरक्षित हैं, जबकि लोकसभा में एक भी नहीं।

कैमूर वन्यजीव अभयारण्य (डब्ल्यूएलएस) विंध्य पर्वत श्रृंखला का हिस्सा है, जिसे कैमूर पर्वतमाला भी कहते हैं। यह पर्वत श्रृंखला मध्य प्रदेश के कटंगी से शुरू होकर कैमूर होते हुए रोहतास जिले के सासाराम तक जाती है।

अभयारण्य में 40 प्रकार के वृक्ष, 45 प्रकार की झाड़ियां और 110 प्रकार की जड़ी-बूटियां और बाघ, तेंदुआ, जंगली सूअर, सांभर, चीतल, चौसिंगा हिरण सहित 16 प्रकार के वन्य जीव तथा लगभग 100 प्रकार के पक्षी पाए जाते हैं।

करीब 1,500 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में फैला यह अभयारण्य अधौरा प्रखंड के 100 आदिवासी-बहुल गांवों की जीवनरेखा था। स्थानीय लोगों का कहना है कि साल 2000 में अभ्यारण्य की घोषणा से पहले तेंदू के 90 प्रतिशत पेड़ इसी क्षेत्र से आते थे। इसके बाद, सबसे पहले तेंदू पत्ता तोड़ना बंद हुआ, फिर अन्य वन उपज और ईंधन की लकड़ी पर भी प्रतिबंध बढ़ते गए।

आज भी आदिवासियों की आजीविका जंगल पर निर्भर है, लेकिन प्रतिबंधों के कारण वे न सिर्फ खुले तौर पर अपनी उपज बेचने से डरते हैं, मजबूरन कम कीमत पर बेच देते हैं। उन्हें भभुआ से 70 किलोमीटर दूर बरकठा के साप्ताहिक इतवारी हाट का इंतजार रहता है, जहां खाने-पीने की चीजों से लेकर घरेलू सामान तक बिकता है, और 6-7 व्यापारी (सभी गैर-आदिवासी) चिरौंजी, महुआ आदि जैसे वन उपज खरीदने आते हैं। शाहिद अफरीदी (28) ऐसे ही व्यापारी हैं जो हाट में वन उपज खरीदने आते हैं। वह बताते हैं कि नियमों की सख्ती से वन उपज की आमद अब काफी कम हो गई है: "पहले मैं यहां से दो गाड़ियां भरकर ले जाता था, लेकिन इस बार केवल एक गाड़ी ही भर पाई।"

लाल बिहारी उरांव कहते हैं, "पहले हम महुआ, पियार, हर्रे और अन्य वन उपज ट्रकों में भरकर गया जिले के शेरघाटी तक ले जाते थे, क्योंकि वहां दाम अच्छा मिलता था।" लेकिन अब यह प्रथा समाप्त हो गई है। ट्रक चालक भी अब फंसने के डर से वन उपज ढोने से डरते हैं। नतीजतन "हमें अपनी उपज चोरी-छिपे बेचनी पड़ती है। महुआ का बाजार भाव 80 रुपये प्रति किलो है, लेकिन हम स्थानीय व्यापारियों को 50 रुपये से भी कम पर बेचने को मजबूर हैं।"

दिसंबर 2025 में, अधौरा प्रखंड के बहेरा गांव का 12 वर्षीय कैर सिंह खरवार अपनी 20 बकरियां चराने जंगल गया तो जंगली जानवरों से सुरक्षा के लिए एक टांगी (कुल्हाड़ी) भी साथ ले गया। शाम को लौटते समय वन विभाग के अधिकारियों ने कैर सिंह को दो थप्पड़ मारकर कुल्हाड़ी जब्त कर ली। कुछ और लोगों की भी टांगियां छीन ली गईं।"

> जानवरों के रहने का इंतजाम हो रहा, लेकिन वन-आश्रितों की ओर सरकार का ध्यान नहीं है। डर है कि अगर यहां टाइगर रिजर्व बना, तो आदिवासियों का जीवन हमेशा खतरे में रहेगा

सुकृति कोरवा (35) की कुल्हाड़ी भी वन विभाग ने जब्त कर ली थी। कहती हैं, "उन्होंने हम पर जंगल में पेड़ काटने का आरोप लगाया। अब अगर हम जलावन की लकड़ी नहीं लाएंगे, तो खाना कैसे पकाएंगे?"

सुकृति ने पारी से कहा, "हम सिर्फ जंगल में जाने और वन उपज इकट्ठा करने की आजादी चाहते हैं।" हालांकि, कैमूर के प्रभागीय वन अधिकारी (डीएफओ) संजीव रंजन विभागीय सख्ती वाली बात खारिज करते हैं।

*

अधौरा का जंगल अब टाइगर रिजर्व बनने की दिशा में बढ़ रहा है। यहां बाघों की मौजूदगी भी दर्ज हो चुकी है। राज्य में बाघों की संख्या बढ़ने के कारण राष्ट्रीय बाघ संरक्षण प्राधिकरण (एनटीसीए) ने इस प्रस्ताव को सैद्धांतिक मंजूरी दे दी है। वर्तमान में बिहार में वाल्मीकि टाइगर रिजर्व ही एकमात्र बाघ अभयारण्य है।

एक और टाइगर रिजर्व बनने का मतलब उन जंगलों का और ज्यादा प्रतिबंधित हो जाना होगा, जिन पर आदिवासियों और अन्य वन समुदायों का जीवन निर्भर है। चिंतित सुकऊ सिंह कहते हैं, "अगर यहां और बाघ लाए गए, तो हम जंगल में कैसे जा पाएंगे? हमारी पूरी जीवन-शैली तबाह हो जाएगी।"

सुकृति कोरवा इस बात से क्षुब्ध हैं कि जानवरों के रहने की व्यवस्था तो हो रही है, लेकिन वन-आश्रितों की ओर सरकार का ध्यान नहीं है। उन्हें डर है कि अगर यहां टाइगर रिजर्व बना, तो आदिवासियों का जीवन हमेशा खतरे में रहेगा।

आदिवासी समुदाय वन विभाग द्वारा जंगल में प्रवेश को लेकर बढ़ती सख्ती को अपने अस्तित्व के लिए गंभीर खतरे के रूप में देखता है।

सांझ ढलने लगती है और जब मैं वापसी की यात्रा के लिए सुकऊ सिंह से विदा लेता हूं, तो वे कहते हैं: "अगर सरकार हमसे हमारा जंगल छीन लेगी, तो हम खत्म हो जाएंगे। हम जीवित नहीं रह पाएंगे।" ■

यह कहानी तक्षशिला-पारी सीनियर फेलोशिप 2025 के तहत की गई है। साभार: ruralindiaonline.org